शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 6 अंक 23 त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 जुलाई 2022

पीअर रिव्यू समितिः
डॉ.टी.के.नारायण पिल्लै
डॉ.शांति नायर
डॉ.के.श्रीलता

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती.के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा.पी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु.सी.आर
डॉ.षीना.यू.एस
डॉ.सुमा.आई
डॉ.एलिसबत्त जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी.एस.एस
डॉ.धन्या.एल
डॉ.कमलानाथ.एन.एम
डॉ.अश्वती.जी.आर

इस अंक में

संपादकीय	:	3
आदिवासी स्वर और हिन्दी कविता	: डॉ.जयकृष्णन.जे	4
स्वयं प्रकाश की 'मेरी प्रिय कथाएँ' पर विशेष अर्थवत्ता खोते समय-समाज-संबंध-सैद्धांतिकी की यथा-कथा	: डॉ.आनंद पाटील	8
हरियश राय की कहानियों में सामयिक जीवन का चित्रण	: डॉ.सिन्धु.एस.एल	15
'एखाने अकाश नाइं' में प्रतिफलित पारिस्थितिक नारी विमर्श	: डॉ.षेर्लिन	19
'सज़ा'- बेगुनाहों की यातना का वृत्तांत	: डॉ.सी.बालसुब्रह्मण्यन	22
समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी स्वर	: डॉ.अंबिली.टी	24
हिंदी का समकालीन ब्लॉग लेखन	: डॉ.बिनु पुलरी	30
मालती जोशी की कहानियों में चित्रित महानगरीय जीवन बोध	: स्मिता चाक्को	34
समकालीन कविता में स्त्री विमर्श	: डॉ.धन्या.बी	37
बदलते मूल्यों में बालक की स्थिति	: डॉ.विकास कुमार सिंह	40
मूल्य शिक्षा एक विवेचनात्मक अध्ययन	: बीना नेगी चौधरी	42
शिक्षा और समाज व्यवस्था के विविध दृष्टिकोण	: सिराजुल हक	46

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन फॉन्ट में या हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होना चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 की वेर्ड (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु. 100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 0471-2332468, 9946253648, 9946679280

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय साहित्य रचनाओं का पुनर्पाठ

आजकल साहित्यिक आलोचना में ज़्यादा प्रयुक्त शब्द है 'विमर्श' और 'पुनर्पाठ'। साहित्यिक आलोचना में रचना विशेष में या विशेष रचनाकार की रचनाओं में या विधि विशेष में 'नारी विमर्श' 'दलित विमर्श', 'वृद्ध विमर्श' या 'आदिवासी विमर्श' की चर्चा की जाती है। 'विमर्श' शब्द का अर्थ है 'किसी बात का विचार करना या विवेचन करना'। 'पुनः (अर्थात् 'फिर') और 'पाठ' (अर्थात् 'पढ़ने की किया') शब्दों के योग से 'पुनर्पाठ' शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'फिर पढ़ना।'

साहित्यिक संगोष्ठियों में किसी साहित्य-विधा की रचनाओं का पुनर्पाठ या विशेष रचनाकार की रचनाओं का पुनर्पाठ या एक खास रचना का पुनर्पाठ विषय बनता है। 'साहित्यिक पुनर्पाठ' में पूर्व प्रकाशित रचनाओं से वर्तमान समाज को या तत्कालीन समाज की समस्याओं को जोड़कर देखा जाता है। कविता, कहानी, उपन्यास जैसी साहित्य विधाओं की रचनाओं के पुनर्पाठ विषयक कुछ आलोचना ग्रंथ भी निकले हैं।

रचनाकार अपने अनुभूत सत्य का चित्रण करते हैं। अतः किसी भी रचना में रचनाकार के विचारों की प्रासंगिकता समझने के लिए उस रचना का पुनर्पाठ आवश्यक है। आलोचक पूर्वाग्रहग्रस्त रहने से सच्चा पुनर्पाठ नहीं किया जा सकता। अतः आलोचक को पूर्वाग्रहमुक्त रहकर रचना पढ़के-समझके उसका पुनर्पाठ करना चाहिए।

300 से अधिक कहानियों तथा एक दर्जन उपन्यासों के प्रणेता प्रेमचन्दजी (1880-1936) सामाजिक यथार्थवादी कथाकार हैं। उनका यथार्थवाद आदर्शोन्मुख है। उनकी हर रचना का अपना महत्व होता है। उनके निधन के इतने सालों बाद भी उनकी रचनाओं की प्रासंगिकता पर चर्चा की जाती है। उनके कथापात्रों के चरित्र आसपास के जीवन से उठाये गये हैं। उन्होंने भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य 'गोदान' लिखा। कृषक जीवन पर 'प्रेमाश्रम' उपन्यास, 'पूस की रात' कहानी; दलित जीवन पर 'कफन', 'पूस की रात' जैसी कहानियाँ नारी विषयक 'बड़े घर की बेटी', 'बूढ़ी काकी', 'आहुति' जैसी कई कहानियाँ लिखीं। किसानों की जीवन समस्याएँ, निम्न जातियों-दलितों पर किये जानेवाले अत्याचार, नारी पर बलात्कार आदि हमें वर्तमान जीवन में निरंतर सुनने को मिलते हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु की 'तीसरी कसम' कहानी में गाड़ीवान तीन कसमें खाता है। हमें वर्तमान जीवन-संदर्भों में कितनी कसमें यूँ खानी पड़ती हैं? उषा प्रियंवदा की बहुचर्चित कहानी 'वापसी' में सेवानिवृत्त होकर घर आनेवाले गजाधर बाबू का जो अनुभव है, समान अनुभववाले कितने ही बुर्जुग हमारे वर्तमान समाज में हैं ? मृदुला गर्ग की 'हरी बिन्दी' कहानी की नायिका सुकून दांपत्य जीवन की घुटन से परेशान है। दांपत्य जीवन में ऐसी परेशानीवाली कई महिलाएँ हमारे चारों ओर हैं, आखिर उनका दांपत्य विघटन तक होता है। कृष्णा सोबंती, नरेन्द्र कोहली जैसे कई कालजयी कथाकार हिन्दी साहित्य में हैं, जिनकी रचनाएँ सदा प्रासंगिक ही रहेंगी।

ग्रामीण संस्कृति के विघटन पर लिखी कई आंचलिक कहानियाँ हैं। क्या आधुनिक व्यक्ति फिर ग्रामीण जीवन पसंद करें? आधिनिक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति में अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता की चिंता है। उसमें अकेलापन, अजनबीपन, स्वार्थ, अहं, कुंठा जैसे भावों का होना सहज है। ऐसे ही पात्रों का चित्रण नये

कहानीकारों ने किया है। नयी कहानी या समकालीन कहानी का पुनर्पाठ आगामी पीढ़ी करे तो देखा जायेगा कि आधुनिक आत्मकेन्द्रित, अहंवादी व्यक्तियों के बीच मानवीय संबन्धों का मूल्य घटता जाता है। जाति भेद, उच्च-नीच भाव, आर्थिक शोषण, नारी शोषण जैसी समस्याएँ हमारे समाज में सदा रहेंगी। क्योंकि अनुभव की प्रामाणिकता, भेगे हुए यथार्थ का चित्रण आदि समकालीन कथा रचनाओं की विशेषताएँ हैं। कमलेश्वर, निर्मलवर्मा, अमरकांत, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव जैसे पूर्ववर्त्ती कथाकारों के समान सामयिक कथाकारों की रचनाएँ भी आधुनिकताबोधी या युगबोधी हैं। उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्ण सोबती, शिवानी, मेहरुन्निसा परवेज़ जैसी कथा लेखिकाओं तथा सामयिक कथा लेखिकाओं की रचनाओं की भी समान स्थिति है। लेखिकाओं ने नारी शोषण विषयक रचनाएँ अधिक की हैं। कमलेश्वर की 'तलाश' बदलने जीवन-मूल्यों की तलाश की कहानी है।

पूर्व प्रकाशित रचनाओं से वर्तमान समस्याओं को जोड़कर देखना पुनर्पाठ।साहित्यिक पुनर्पाठ करने से यह देखा जाता है कि कुछ समस्याएँ ऐसी हैं, जो बिना किसी सुधार के समाज में बनी रहती हैं।

♦ संपादक
डॉ.पी.लता
मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी

आदिवासी स्वर और हिन्दी कविता

♦ **डॉ.जयकृष्णन.जे**

आदिवासी समाज हाशियेकृत समाज है। बाहरी दुनिया से कटे हुए और जंगलों में जीने के लिए विवश हुए ये लोग आज भी उपेक्षित और शोषित हैं। गरीबी और अशिक्षा उनकी मुख्य समस्याएँ हैं। उनका जीवन प्रकृति पर निर्भर है। अपनी धरती, संस्कृति व भाषा के संरक्षण को वे अग्रिमता देते हैं। भौगोलीकृत व्यवस्था उनके सामने नए छद्म का रूप लिए खड़ी है। विकास के नाम पर उनको अपनी ज़मीन से बेदखल कर दिया जाता है, उनकी प्राकृतिक संपदाएँ लूटी जाती हैं। आदिवासी साहित्य भोगी हुई वेदना की खुद अभिव्यक्ति देने का साहित्य है। अपनी ज़मीन, भाषा, संस्कृति तथा परंपरा का संरक्षण करके अपने अस्तित्व व अस्मिता को बनाए और बचाये रखना आदिवासी साहित्य का मकसद रहा है।

बीज शब्द- प्रकृति से घनिष्ठ संबन्ध, शोषण और विस्थापन, भोगे यथार्थ का शब्दांकन, संघर्ष व आक्रोश।

भूमिका

किसी विशिष्ट भूप्रदेश के मूल निवासी को आदिवासी कहा जाता है।उन्हें जनजाति, वनवासी, गिरिजन आदि नामों से भी जाना जाता है। भारतीय संविधान में उनको अनुसूचित जनजाति कहा गया है। हमारे संविधान में उनके संरक्षण और आरक्षण केलिए प्रावधान बनाए गए हैं। हमारे देश में आदिवासियों ने ही पहले पहल अंग्रेज़ों के खिलाफ राजनीतिक लड़ाई शुरू की थी। सिनगी दई जैसी आदिवासी वीर महिला विदेशियों से लोहा लेते हुए शौर्य की प्रतीक बनी है। बाबा साहब के प्रभावस्वरूप आदिवासी समाज में समानता और स्वाधीनता की सोच पनपी है। कई आदिवासी संगठनों की शुरुआत हुई। उनके बीच से कवियों और कथाकारों का जनम हुआ। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में आदिवासी

केन्द्रित साहित्य विशेष रूप से गतिमान हुआ है। अपना जीवन और अपना दुख स्वयं व्यक्त करने की चेतना उनमें जगी। अपनी जीवनशैली, अपनी संस्कृति और अपनी भाषा की गरिमा को उन्होंने पहचाना। उन्हें बाह्य जगत के सम्मुख पेश करने की चेतना उनमें उभरी। सदियों की खामोशी तोड़कर वे बोल उठे। वाहरूसोनवणे की 'स्टेज' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ देखिए -'हम स्टेज पर गए ही नहीं/ और हमें बुलाया भी नहीं/ उंगली के इशारे से/ हमारी जगह/ हमें दिखाई गई/ वे स्टेज पर ख़डे हो हमारा दुख/ हमें ही बताते रहे/ हम बड़बड़ाए/ कान देकर वे सुनते रहे/ और हमारे कान पकड़कर/ हमें ही धमकाया/ माफी माँगो नहीं तो.....।' आदिवासी शोषण के शिकार हैं। बाहरी दुनिया के लोग उनको अपने दायरे से बाहर आने ही नहीं देते। उनको विकसित होने नहीं देते। अपने दर्द को वाणी देने के साथ-साथ अपने ऊपर पड़नेवाले अत्याचारों के खिलाफ आक्रोश भी आदिवासी साहित्य में मुखर है।

प्रकृति और आदिवासी

प्रकृति और आदिवासी के बीच की पारस्परिकता अटूट और घनिष्ठ है। आदिवासी हर विपरीत परिस्थिति में जीते हैं। प्रकृति की आपदा को सहते हैं। प्रकृति को पालते-पोसते हैं। प्रकृति और अपने पूर्वजों की इज़्ज़त करते हैं। रमणिका गुप्ता के शब्दों में "अस्तित्व, अस्मिता और आत्मसम्मान उनके लिए अनिवार्य हैं।अस्मिता की रक्षा केलिए उनकी भाषा और संस्कृति का ज़िन्दा रहना ज़रूरी है, तो अस्तित्व के लिए ज़रूरी हैं जल, जंगल और ज़मीन का होना। जल जंगल ज़मीन विहीन आदिवासी की कल्पना करना ही असंभव है।"[1] आदिवासी प्रकृति की गोद में जन्मे और पले हैं। प्रकृति के साथ सहजीवन की आकांक्षा उनमें प्रबल है।वे प्रकृति को माँ मानते हैं। उससे केवल उतना ही लेते हैं,जितना उन्हें ज़रूरी है। आज जो प्रकृति दोहन हो रहा है, उसका बुरा नतीजा हमको भुगतना पड़ता है। पारिस्थितिक संकटों के प्रति आदिवासी कवि संवेदनशील हैं। प्रकृति के सत्यानाश से मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। इसके प्रति हमें सचेत करते हुए ग्रेस कुजूर 'हे समय के पहरेदारो' शीर्षक कविता में बताती हैं 'एक बूँद पानी के लिए/ तड़पतड़प जाएँगी/ हमारी पीढ़ियाँ/ इसलिए/ मैं सच कहती हूँ/ हे समय के पहरेदारो/ तुमने अवश्य सुना होगा/ एक वृक्ष की जगह/ लगाओ दूसरा वृक्ष/ क्या कभी सुना है/ एक पर्वत के बदले/ उगाओ दूसरा पर्वत।"

आदिवासी प्रकृति से मिलजुलकर रहते हैं। सभी जीवजन्तुओं से उनकी गहरी मैत्री है। ज़हरीले साँपों से वे खेलते रहते हैं, समुद्री जीवों से उनकी दोस्ती रहती है। तूफानों, भूकंप और ज्वालामुखियों ने भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ा है। उनकी बरबादी करनेवाला और कोई नहीं, मनुष्य है। हरि राम मीणा की 'खत्म होती हुई एक नस्ल' कविता की पंक्तियाँ हैं "जिन्होंने हमें गोलियों से भूना/ वे इनसान थे/ जिन्होंने हमें टापों के इधरउधर खदेड़ा/ वे इनसान हैं/ और जो हमारी नस्ल को उजाड़ेंगे/ वो इनसान होंगे।"

शोषण और पलायन

आदिवासी पूँजीपतियों, ज़मीन्दारों व उद्योगपतियों के द्वारा खदेड़े जाते हैं, ठगे जाते हैं, विस्थापित किए जाते हैं। वे परंपरा से शोषण को सहते आए हैं। लेकिन उनकी नई पीढ़ी इसे सहने केलिए तैयार नहीं है। नई पीढ़ी के लोग सभी अत्याचारों व अनीतियों का सख्त एतराज़ करते हैं। वे अपने अधिकारों की माँग करते हैं। आदिवासी क्षेत्र में बहुत अधिक परिवर्तन ज़रूरी हैं। वे परिवर्तन चाहते हैं, लेकिन उनके जीवन में अभी सूर्य उगा नहीं है।

अभी चाहत के प्रभात का सूर्य उगा नहीं। (सरिता सिंह बडाईक की चाहत कविता से)

आज़ादी के बाद देश के विकास के हर कार्यक्रम केलिए आदिवासियों को बड़ी कीमत देनी पड़ी है। अपने विस्थापन और पलायन से वे विकास की कीमत अदा करते हैं। आज वे विकास के नाम पर अपने ऊपर होनेवाले षड्यंत्र को समझने लगे हैं। विकास का नाम ही उनको दर्द देनेवाला है। राम दयाल मुंडा ने 'विकास का दर्द' शीर्षक कविता में यों लिखा है "मुझको विकास का/ दर्द यह असह्य/ देर तक सहना न होगा/ समय से पहले ही मेरा/ काम तमाम होगा।"

आदिवासी जीवन का शब्दचित्र रमणिका गुप्ता ने यों खींचा है "उसका मानस सौन्दर्य पर रीझता हैमाटी सा सीझता है। कला का व्यापार उसको आता नहीं। कला उसकी आदत है। गीतों को वह बेचता नहीं, वह उनसे समृद्ध होता है। नृत्य का वह प्रदर्शन करना नहीं जानता, उससे वह अनुशासित होता है। वह व्यक्ति नहीं,समूह है। उसकी बांसुरी से समस्त पक्षियों की पीड़ा और आनन्द का स्वर घनीभूत होकर निकलता है तो प्रकृति,मानवमन और पशुपक्षी सब बेचैन हो उठते हैं। संवेदना और प्रेम का अद्भुत मिश्रण है उसमें। ज़िन्दगी का प्यार,हर हाल में जीने का संकल्प उसमें हिलोरें लेता है।"[2] आज तक आदिवासी शोषण का मूक सहन कर रहे थे। महाजन, ठेकेदार सब एकजुट होकर उनकी ज़मीन हड़प लेते हैं, उनकी औरतों की अस्मित लूटते हैं। आदिवासियों को चुप कराने का, उनसे अपने अधिकारों को छीन लेने का, उनके प्राकृतिक संसाधनों को लूटने का तथा उनकी बेदखली का षड्यंत्र रचा जाता है, तो आदिवासी कवि चुप होकर नहीं बैठेगा। "वह धनुष उठाएगा/ प्रत्यंचा पर कलम चढ़ाएगा/ साथ में बांसुरी और मांदर भी/ ज़रूर उठाएगा/ जंगल के हरेपन को/ प्रचाने की खातिर/ जंगल का कवि/ मांदर बजाएगा/ बांसुरी बजाएगा/ चढ़ाकर प्रत्यंचा पर कलम।" (महादेव टोप्पो की जंगल का कवि कविता से)

बाहर की दुनिया आदिवासियों को कमज़ोर जनविभाग समझती है। उनकी क्षमताएँ नहीं पहचानी जाती हैं। वे बहिष्कृत और तिरस्कृत हो गए हैं। अपने ही देश में वे परदेशी बने हैं।अपनी मिट्टी से वे बाहर निकाले जाते हैं। इसप्रकार उनके अस्तित्व का विनाश हो रहा है। महादेव टोप्पो 'मैं पूछता हूँ' कविता में पूछते हैं "संविधान की भाषा में हम/ अनुसूचित जाति या/ अनुसूचित जनजाति हैं/ मनु की भाषा में शूद्र/ कम्युनिस्टों की भाषा में शोषित/ भाजपाइयों की भाषा में/ पिछड़े हिन्दू/ मैं पूछता हूँ तुम सबसे/ आखिर इस देश में इस प्रजातंत्र में/ हम क्या हैं हम क्या हैं।"

चेतना की उठान

आदिवासी लेखन उनके जीवन की असलियत का लेखन है। "आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है। इसमें लक्षित विद्रोह जीवन के बुनियादी हकों से महरूम करनेवाली व्यवस्था के विरोध की अभिव्यक्ति है।यह साहित्य केवल शब्दबद्ध रचना नहीं है, बल्कि मुद्दों पर आधारित, शोषित, उपेक्षित, बहिष्कृत वर्ग की आवाज़ उठानेवाला प्रतिबद्ध, परिवर्तनकामी और संकल्पबद्ध साहित्य है।"[3] निर्मला पुतुल की कविता 'आदिवासी स्त्रियाँ' व्यापार और राजनीति के कुचक्रों के बीच पिसनेवाली स्त्री के संघर्ष का आख्यान है। "वे नहीं जानती कि/ कैसे पहुँच जाती हैं उनकी चीज़ें दिल्ली/ जबकि राजमार्ग पर पहुँचने के पहले ही/ दम तोड़ देती हैं/ उनकी दुनिया की पगडंडियाँ।" यह साजिश केवल स्त्रियों पर नहीं, समूचे आदिवासी समुदाय पर चल रही है। बाज़ारवाद ने जिस तरह से पूरे आदिवासी समाज के भोलेपन और निश्छलता को आहत किया है, जिस तरह अपनी ही दुनिया में खुशी और उल्लास के उत्स में ड़बे जनमानस को अपनी गिरफ्त में ले, उन्हें पीड़ादायी स्थितियाँ दीं, यह गौर करने लायक है।.....वास्तव में नगरीय संस्कृति, सभ्यता के संपर्क में आने के बाद ही

आदिवासियों की समझ में आया कि उन्हें केवल बर्बर व जंगली समझकर उनको अपमानित ही नहीं किया जाता वरन् उनकी अधिकार क्षमता, जीवन शैली और संस्कृति को महत्वहीन सा बताते हुए बराबर उन्हें हाशिये पर रखने की कोशिश दलितों की तरह ही होती रही है।"[4] आदिवासी कवि ऐसी दुरभिसंधियों से अवगत होकर अपनी तीखी प्रतिक्रिया ज़ाहिर करता है। वह अपने अस्तित्व और अस्मिता को बचाए रखने के लिए प्रणबद्ध है।

आदिवासी साहित्य में कल्पना या अतिरंजना की गुंजाइश नहीं है। जिस फ्रेम के भीतर आदिवासियों को दबाकर रखा गया था, उसे तोड़कर बाहर आने केलिए वे संघर्षरत हैं। आज वे अपने दोहन की साज़िश को पहचानते हैं। औपनिवेशिक सत्ता ने उनके जंगल और ज़मीन को उनसे छीन लिया है। इसलिए उन शक्तियों के खिलाफ उनको बहुत अधिक संघर्ष करना पड़ा है और उनका यह संघर्ष आज भी ज़ारी है। आदिवासी कवि आशावादी है, वह एक सुन्दर भविष्य की कामना करता है। वनवासी आनेवाले सुन्दर दिनों का सपना देखते हैं। "वे भी चूम लेंगे आसमान/ चीर डालेंगे अंधकार/ अक्षरों पर सवार होकर/ लाएँगे तारे/ आसमान से तोड़कर/आज नहीं कल ज़रूर ..... बस्तरिया आदिवासी भी अब/ जानने लगे हैं/ चुप्पी का दर्द/ विद्रोह का सुख/ वे समझने लगे हैं/ अनपढ़ असंगति/रहने की पीड़ा।" (लक्ष्मण सिंह कावड़े की 'भविष्य के प्रति' कविता से) रमणिका गुप्ता लिखती हैं -"आदिवासी लेखन की चेतना का उभार बहुमुखी, व्यापक और यथार्थपरक है। यह प्रतिबद्ध लेखन है, जिसका लक्ष्य समाज और मानव का कल्याण है। यह जनतांत्रिक है और समता, बराबरी, भाईचारा में विश्वास रखता है। शिक्षा के महत्व को समझते हुए यह लेखन साक्षरता और जनजागृति के अभियान में आगे बढ़ रहा है।"[5]

निष्कर्ष

आदिवासियों का आनन्द, दुख, परिवर्तन की चाह सभी समाजसापेक्ष है, व्यक्तिसापेक्ष नहीं। आदिवासी आधुनिक परिवेश में परिवर्तन चाहते हैं, बराबरी के लिए प्रयत्नशील हैं। आदिवासी साहित्य वर्तमान व्यवस्था को बदलने हेतु संकल्पबद्ध साहित्य है।वर्तमान व्यवस्था में वे पलायन के लिए विवश हो रहे हैं। आदिवासी साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है, मानसिकता बदलने का साहित्य है और आत्मआलोचना का साहित्य भी है। आज उनकी भाषा, संस्कृति और अस्मिता खतरे में हैं। अपनी ज़मीन और अपने प्राकृतिक संसाधनों पर अपना अधिकार हासिल करना आदिवासी कवि अपना दायित्व समझता है। अपने विद्रोही स्वर को बुलन्द करते हुए वह यह दायित्व निभा रहा है।

संदर्भ :

(1) रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, पृ.सं.84

(2) रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, पृ.सं.9

(3) डॉ मनोड पांडेय, आदिवासी विमर्श परंपरा से पुनर्पाठ की ज़रूरत पृ.सं.19

(4) वाङ्मय त्रैमासिक, अप्रैल-सितंबर, 2021, पृ.सं.12

(5) रसायिक गुप्ता, आदिवासी लेखन एवं उभरती चेतना सामयिक प्रकाशन, पृ.31

♦ असोसियट प्रोफसर, हिन्दी विभाग
सरकारी आर्टस कॉलेज,
तिरुवनन्तपुरम।

स्वयं प्रकाश की 'मेरी प्रिय कथाएँ' पर विशेष

अर्थवत्ता खोते समय-समाज-संबंध-सैद्धांतिकी यथा-कथा

♦ डॉ.आनंद पाटील

आलेख का सार - कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से लोककथा का अस्तित्व पीढ़ी-दर-पीढ़ी अक्षुण्ण रहा है। स्वयं प्रकाश के लोककथा-शिल्प में अन्तर्निहित भावबोधात्मक शक्ति पाठक (श्रोता) के मन-मस्तिष्क को आलोकित करती है। उन्होंने लोककथाओं के विस्तृत कथ्य में आधुनिक जीवन की विसंगतियों के साथ-साथ पारिस्थितिकी एवं समसामयिक संदर्भों को रेखांकित करते हुए अर्थवत्ता खोते समाज एवं जर्जर-पंजर होते मानवीय संबंधों का सूक्ष्म अन्वेषण एवं अनुशीलन किया है। लोककथाओं में मानसिक स्थितियों की कसमसाहट पूरी गहनता के साथ अंकित है। कथाओं के केन्द्र में व्यक्ति, जीवनसंबंध, परिस्थिति, पारिस्थितिकी, परिवेश एवं लोक जीवन में अंतर्व्याप्त भावना का सुदीर्घ विस्तार है। लोक के अस्तित्व को लोककथा के कथ्य-शिल्प में पुनरुज्जीवन प्राप्त हुआ है।

बीज शब्द - पारिस्थितिकी, समतामूलक समाज, अपनत्व, स्वाभाविक सरलता, सामाजिक स्वास्थ्य, वैचारिक अंधानुकरण, पारिस्थितिक असंतुलन, कालबाह्य, सर्वजनहित

बाज़ारवाद के इस समय में जीवन, कला एवं साहित्य में प्रतिदिन, प्रतिक्षण नवनवीन 'मॉडल' (प्रतिमान) का आविष्कार (सृजन) हो रहा है और सोशल नेटवर्किंग पर कुछ हद तक उसकी नवीनता चर्चा का केन्द्र बन रही है। परंतु ध्यातव्य है कि वह नवीनता धीरे-धीरे अपनी निरंतरता और अर्थवत्ता खो देती है। हर अगले क्षण उससे उत्कृष्ट नवीन मॉडल अपने नवीन फिगर (रूप-संरचना) एवं फीचर (वैशिष्ट) के साथ उपस्थित होता है। लाज़िमी है कि नवीन रूप-संरचना और वैशिष्ट की उपलब्धता से पुराने का अस्तित्व गौण हो जाता है। बावजूद इसके 'ओल्ड इज़ गोल्ड' कहा जाता है। इसके अनेकानेक कारण हैं। वर्तमान समय में किसी भी व्यक्ति के पास अपने (स्व) से इतर दूसरे (अन्य/ औरों) को सुनने-समझने का समय नहीं है। हर कोई अपनी बातों की रट लगाए हुए है। अध्ययनशीलता दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। हम अध्ययन की तुलना में आत्ममुग्धता (मोह) को अधिक जी रहे हैं। चित्र-विचित्र चित्र (क़िस्म-क़िस्म के) धड़ल्ले से सोशल मीडिया के माध्यम से साझा किये जा रहे हैं। वास्तव में पहले तो सभी इस विचित्र समय और परिवेश (परिस्थिति) में जीने के लिए अभिशप्त थे, अब इसके आदी भी हो गए (रहे) हैं। ऐसा लगता है हर कोई अपने आप में परिपूर्ण है और संतृप्त भी। परंतु विडंबना यह है कि जीवन में एक खालीपन (रिक्तता) उत्पन्न हो गया है, जो गाह-ब-गाह मिट्टी की परतों के नीचे से सिर निकालते अंकुर की तरह खुलकर ऊपर दिख जाता है और इसी में दिख जाती हैं सुलगते-उलझते-मुरझाते जीवन की झाँकियाँ। जीवन में उत्पन्न यह खालीपन-उलझनें-बिखराव साहित्यिक कलाबाजियों में खब रूपांकित हो (होता) रहा है। परंतु ऐसे साहित्य की पठनीयता (विश्वसनीयता?) धीरे-धीरे ख़त्म होती जाती है। गहराई से जानें-समझें-मानें तो यह इस सदी का स्बसे महत्वपूर्ण 'बदलाव' है।

गोकि प्रत्येक व्यक्ति के पास प्रत्येक प्रश्न का उत्तर (सूचनात्मक और मनमाना) है। परंतु अपने जीवन का उत्तर (अर्थ) खोजने में वह असमर्थ है। हम एक साथ कई जीवन जी रहे हैं। जिसे हम 'अपनी ज़िन्दगी' कह रहे हैं, वास्तव में वह 'अपनी' तो रही ही नहीं। उस

पर समतामूलक सैद्धांतिक के साथ-साथ बाज़ारवादी सोच, ग्लैमर जगत की चकाचौंध और भावातिरेकी आकांक्षाओं ने लंबे समय से कब्ज़ा कर लिया है। यह द्वंद्वात्मकता है कि हमें समता भी चाहिए और सबकुछ भी। हम हर तरह से 'अपडेटेड' (अद्यतन) रहना चाहते हैं। अर्थात् अपडेट का सम्मोहन हमसे छूटता नहीं, अपितु कचोटता रहता है। मन इस क़दर उचाट रहता है कि प्रत्येक क्षण एक-एक- सदी सा बीतता है और व्यक्ति बीते हुए समय के कटघरे में खड़ा अपनी आप बीती बारंबार हलफ़नामे की तरह पढ़ता जाता है। सब भलीभाँति जानते-समझते हैं कि हलफ़नामा सुननेवाला व्यक्ति आवश्यक नहीं कि उससे पूरी तरह जुड़े हो। न ही उसमें श्रोता को जोड़े रखने की शक्ति ही होती है। परंतु यदि साहित्य भी हलफ़नामा बनने लग जाए, तब समझ लेना चाहिए कि मामला बहुत गंभीर है।

प्रायः सुनते-पढ़ते-कहते रहे हैं कि साहित्य में 'सर्व जनहित' की सोद्देश्य कामना होती है। साहित्य की यही उद्देश्यपरकता पाठक की रचना के साथ संसक्ति (जुड़ाव) को निर्धारित करती है। हम चाहे जितने आधुनिक-उत्तरआधुनिक हो जाएँ, हमारे पुराने अपने शब्दों में जो गरिमा एवं अपनत्व है, वह चलते किस्म के शब्दों के प्रयोग से भरी नहीं जा सकती। भाषा सरलीकरण की प्रक्रिया एवं विचारधारात्मक प्रेम और फ्रेम में हमने कथा (कहानी) जैसी रोचक विधा को इस क़दर जटिल बना दिया है कि पठनीयता अपने आप में सबसे बड़ा प्रश्न बन गया है। हम भूलते जा रहे हैं कि कथा कही एवं सुनी जाती है और उसका आस्वादन किया जाता है। उसमें आँखों से (शब्दों से) हृदय में गहरे उतर जाने और गहरा प्रभाव छोड़ने की अद्भुत शक्ति होती है। यही शक्ति पाठक को अनायास श्रोता (सहृदय) बना देती है। कथा के पात्रों के साथ सहृदय का तादात्म्य ही कथा की जीवंतता (प्रभावशीलता) का प्रमाण है।

बहरहाल, कथा कहते ही अनायास ही दादी माँ और नानी माँ का स्मरण हो आता है। बचपन में दादी माँ और नानी माँ की कहानियाँ थपकियाँ देकर सुलाया करती थीं। कहीं न कहीं बचपन की सुनी कहानियाँ हममें अंदर ही अंदर बौद्धिकता, तार्किकता, चेतनता जगाती आई हैं, जो हममें स्मृति रूप में बसी रही हैं। जीवनपर्यंत बसी रहती हैं और यथावश्यकता तथा प्रसंगानुसार स्मरण आती रहती हैं और असरदार काम करती हैं। जो भी हो, प्रत्येक व्यक्ति को बचपन में सुनी कहानियाँ अवश्य ही याद रह जाती हैं।

राम-कृष्ण, चाणक्य-चंद्रगुप्त, छत्रपति शिवाजी महाराज आदि के जीवन से जुड़ी प्रबोधन करनेवाली कहानियाँ तथा अरेबियन नाइट्स (अलिफ लैला) के सिंदबाद जहाज़ी, बीरबल एवं तेनाली रामन की होशियारी चतुराई से भरी कहानियाँ बाल मन पर गहरा प्रभाव डालती रही हैं। इनसे बच्चों का न केवल मन बहलता है, अपितु वे बहुत कुछ सीखते-समझते भी हैं। पंचतंत्र की प्रत्येक कहानी में जीवन का मंत्र एवं तत्व सत्व विद्यमान है। इन कथाओं को सुनकर (पढ़कर) हममें भावात्मकता के साथ-साथ चेतनात्मकता भी उत्पन्न होती ही है। इन कथाओं को बोध कथा (नीतिकथा) संभवतः इसीलिए कहा जाता है क्योंकि इनसे हमारे बोध एवं क्षमता में कल्पनातीत वृद्धि होती है।

स्वयं प्रकाश की 'मेरी प्रिय कथाएँ' (2012) पढ़ते हुए बचपन में यदाकदा सुनी कथाएँ स्मृतियों की आड़ से लुकछुप कर स्मरण आती हैं। परिस्थिति, पारिस्थितिकी, परिवेश, व्यक्ति, जीवनसंबंध, कुलमिलाकर लोकजीवन में अंतर्व्याप्त भावना और इनमें हो रही उथल-पुथल की थाह लेती स्वयं प्रकाश की कहानियाँ अंत तक बाँधकर रखती हैं। यह ऐसा बंधन है कि मुक्ति की इच्छा का अंतर्बोध नहीं कराता और पाठक कहानियों में छटपटाते कथापात्रों के साथ सहज ही जुड़ता चला जाता है। जीवन के अनेकानेक पहलुओं से रूबरू होता चला जाता है। अधिकतर कहानियों में ऐसा लगता है, मानो स्वयं प्रकाश व्यक्ति तथा उसकी प्रत्येक हरकत कुलमिलाकर जीवन को 3-डी नेत्रों से देख रहे हैं बहुत क़रीब से और उसमें इस क़दर गहरे उतर रहे हैं, गोया विभ्रम और यथार्थ एकरूप हो गये हैं। कथा एक सीध

में चलने के बावजूद कहानियों के किरदार कब, किस षड्यंत्र का शिकार हो जायेंगे, पता ही नहीं चलता। आरंभ से अंत तक एक सनसनी और रहस्यात्मकता पूर्ण सातत्य के साथ बनी रहती है। ऐसा लगता है, मानो अपने ही शब्द-विचार-स्वप्न धोखाधड़ी करने लगे हैं। जो चाहते हैं, वह होता नहीं और जो होता है, वह कभी चाहा ही नहीं था की सी स्थिति निरंतर बनी रहती है। किसी का, किसी से किसी तरह का साथ नहीं है। सब व्यस्त हैं, मस्त हैं और त्रस्त भी। मज़ेदार बात यह है कि सब एक-दूसरे से कुछ-न-कुछ चाह रहे हैं। सच! इस घोर अत्याधुनिक समय में व्यक्ति ऊपर-ही-ऊपर जुड़ा हुआ है। परंतु भीतर से अलहदा तथा आत्मकेंद्रित जीवन जी रहा है। गोया जो सामने उपस्थित (प्रस्तुत) है, वह वास्तव (में) है ही नहीं। जीवन रहस्य सा बनता और बीतता जा रहा है। हम अपनी ही खोज करने लगे हैं कि कहाँ खोए खोए से रहने लगे हैं कि वह कौन सी दुनिया है, जिसने अपनी ही दुनिया से हमें अलहदा कर जीने का आदी बना दिया है! कभी कभार हमें अपनी ही दुनिया से डर सा लगने लगता है। जीवन को सनसनीखेज बनते देख अनायास ही रोंगटे ख़डे होने लगते हैं।

ऐसे रहस्यमय समय में, मानो या न मानो लोक का विलोप हो रहा है और स्थापित हो रहा है एक अशांत उद्विग्न समाज, जिसका स्वाभाविक झुकाव बाज़ार और लाभ की ओर भी है और समतामूलक समाज की ओर भी जबकि पता है कि दोनों एकसाथ संभव नहीं हैं। रिश्ते, नाते, संबंध, भावनाएँ, प्रेम, अपनत्व, जीवनमूल्य, जीवन के अंतरंग पल, स्त्री का यौवन और सुंदरता से लेकर बच्चों की मुस्कान एवं किलकारियाँ तक सब कुछ बाज़ार की गिरफ़्त में है। बाज़ार सबकुछ को कैश करना चाहता है। क्योंकि हर अच्छी (सुंदर) लगने-दिखनेवाली चीज़ बिकाऊ है। यदि बिकाऊ न भी हो तो बाज़ार के पास उसे बिकाऊ बनाने के हर तरह के औज़ार मयस्सर हैं। ऐसे समय में नैतिकता-शुचिता मूल्यों की बात करना लगभग वर्जित हो गया है। लाज़िमी है अब वह सबकुछ सामंती मूल्य मात्र हैं (आउटडेटेड) और उनसे बौद्धिक पिछड़ापन दिखता है। आज हर कोई हर तरह से आधुनिक कहलाना चाहता है, फिर चाहे जो जैसा करना पड़े। ऐसे में रिश्ते-नाते संबंध, समाज भाषा जीवन का केंद्रीभूत स्वरूप उजागर होता जाता है। गोया एक अज़ीब तरह के साम्राज्य का विस्तार हुआ है, जिसमें हरकोई सम्राट है और हर उस ऊँचाई को हासिल करना चाहता है, जो वास्तव में किसी को मयस्सर नहीं।

कहना न होगा कि बाज़ार के इस परिवेश में लोक शब्द जर्जर पंजर बन गया है और प्रचलन में आ गया है लोग। प्रायः लोग शब्द का प्रयोग अपनत्व का नहीं बल्कि परायेपन की भावना का बोध कराता है। सनद रहे जब बातों ही बातों में किन्हीं अपनों के लिए लोग शब्द का प्रयोग होता है, तो वे प्रायः नाराज़ हो जाते हैं और कहने लगते हैं- "अच्छा! अब हम लोग हो गए?"

'लोक' शब्द अत्यंत व्यापक है। इसमें लोग के विपरीत अपनत्व ही अपनत्व विद्यमान है। बहरहाल, लोक शब्द धीरे-धीरे प्रचलन से बाहर हो रहा है अथवा प्रयुक्त हो भी रहा है तो फैशन के तौर पर ही अन्यथा भदेस के रूप में अथवा अंग्रेज़ी के फोक के अनुवाद के रूप में, जो कि सर्वतः अनुचित है। जो हो, लोक की भावनाएँ धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही हैं। ऐसे समय में, स्वयं प्रकाश ने 'मेरी प्रिय कथाएँ' के माध्यम से कहानी को लोककथा के कथ्यशिल्प में प्रस्तुत कर लोक के अस्तित्व को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया है।

वैसे, इस बाज़ारवादी समय में साहित्य की तमाम विधाओं में जहाँ 'फैशन' और नित-नवीन 'मॉडल' का बोलबाला है, लोककथा के कथ्य-शिल्प में कहानी रचना और पूरे संकलन में उसकी निरंतरता बरक़रार रखना, किसी जादुई हरक़त से कम नहीं है, परंतु स्वयं प्रकाश ने इसे चुनौती के रूप में तीव्र भावावेग में तमाम भावस्थितियों मनः स्थितियों को रेखांकित करते हुए प्रस्तुत किया है। ऐसा करने का कारण लेखक ने स्पष्ट किया है "लोककथाओं का कथ्य सर्वकालिक होता है, अर्थात् किसी भी समय का आदमी उसके साथ जुड़ाव

महसूस कर सकता है। दूसरे उसे कहने का ढंग इतना रोचक होता है कि सुननेवाले का ध्यान इधर-उधर न भटके। कथा एक सीध में चलती है। उसमें फालतू के भटकाव या पेंच नहीं होते और उसका प्रवाह निरंतर बना रहता है और... उसमें कुछ कुतूहल का तत्व भी होता है।"[1]कथा के फलक को व्यापक और सर्वकालिक बनाने की दृष्टि से यह उत्तम प्रयास है। वह कथा ही क्या जो समय-परिस्थिति के साथ कालबाह्य हो जाए। परंतु, यदि वह किसी अव्यवहार्य विचारधारा का अनुसरण करती है तो उस पर कालबाह्य होने का ख़तरा सहज ही मंड़राने लगता है।

उल्लेखनीय है कि लोककथाओं में अपने इर्दगिर्द के परिवेश की अत्यंत सूक्ष्म एवं सहज बुनावट होती है। लोककथाओं में व्यक्ति का अपने परिवेश से लगाव आसक्ति के हद तक दिखाई देता है। यहाँ तक कि बहुत हद तक व्यक्ति और परिवेश को अलगा कर देखना भी संभव नहीं हो पाता है, गोया व्यक्ति और परिवेश एक-दूसरे के पूरक बन गए हों। यही पारस्परिक अनंतरता लोक की, अतएव लोककथाओं की विशेषता है। यद्यपि परिवेश से लगाव और जुड़ाव के बावजूद व्यक्ति पर परिवेश हावी नहीं है, वह स्व से सर्वस्व तक पहुँचने को उद्यत होता है। 'मेरी प्रिय कथाएँ' में बहुतांश स्थानों पर लगता रहा कि व्यक्ति पर परिवेश और अन्य कारक हावी हो रहे हैं।

ब़हरहाल, इस संकलन की पहली कहानी 'जंगल का दाह' व्यक्ति और परिवेश की पारस्परिक अनंतरता को उजागर करनेवाली कहानी है। इसमें एक ओर व्यक्ति का अपने परिवेश से लगाव-जुड़ाव अंकित है, तो दूसरी ओर व्यक्ति की लालसा, लोलुपता, स्वार्थांधता भी! इसमें केवल सत्ता वर्ग की लोलुपता और स्वार्थपरता ही नहीं अपितु जनजातीय रुझानों के साथ-साथ पारिस्थितिक एवं समसामयिक संदर्भों में पड़ताल भी उल्लेखनीय है। वनवासी मामा सोन के चरित्र के माध्यम से स्वयं प्रकाश ने एक ऐसा प्रतीक गढ़ा है, जो प्रकृति की गोद में पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखना जानता (चाहता) है। यह भी कि वनवासी समाज अपनी सरलता के कारण अपने जीवन में कष्ट बाधाओं का सामना करता रहा है। मामा सोन अपनी स्वाभाविक सरलता के कारण मात खा जाते हैं। पूरी कहानी में मानसिक स्थितियों की कसमसाहट और गहनता अत्यंत सरलीकृत एवं काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत हुई है।

कथा का आरंभ प्रस्तावना से हुआ है जो प्रायः लोककथाओं में पाया जाता है। कथा के आरंभ में ही वनवासी मामा सोन के जीवन एवं सहअस्तित्व की पूरी झलक मिल जाती है। अर्थात् कथा के केन्द्र में वनवासी मामा सोन हैं, जो वनवासी बच्चों को धनुर्विद्या सिखाते हैं और आगे यही बच्चे धृष्ट राजकुमार के प्राण बचाते हैं। मामा सोन की विद्या की बात सुनकर राजा अपने नालायक राजकुमार की शिक्षा-दीक्षा के लिए उन्हें ही चुनता है और उनका नया नामकरण करता है आचार्य शोण। कथाकार अभिजात दृष्टि पर कटाक्ष करता है कि "लँगोटी लगानेवाला मामा सोन राजकुमार का गुरु कैसे हो सकता है?"[2] फिर तो राजा जंगल में ही राजकुमार के लिए सारे ऐशोआराम तलब कर देता है। महल बनवाया जाता है और तमाम बंदोबस्तों के बावजूद अंततः जब वह धनुर्विद्या सीखने में असफल हो जाता है, तो मामा सोन को ही उसके बाण का लक्ष्य बना देता है क्योंकि "मनुष्य से बड़ा कौन सा लक्ष्य हो सकता है।"[3] यह कथन अयोग्य की योग्य पर अराजकता को इंगित करता है। राजा राजकुमार संदर्भ को वंशवादी दृष्टि से देखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो कथाकार वर्तमान राजनीतिक दलों की वंशवादी प्रणाली पर कटाक्ष कर रहा है। सहज संकेत है कि अयोग्य राजकुमार बारंबार असफल होने के बावजूद न केवल राजा बनने को उद्यत है अपितु वह हथकंडे अपनाकर वर्चस्वशाली होने का दंभ भरता है।

कथा करवट लेती है और "इससे पहले कि तीर राजकुमार की कमान से निकले, चारों तरफ के घने पेड़ों के पीछे से सैकड़ों तीरों की वर्षा शुरू हो गयी। राजा के सैनिकों में भगदड़ मच गयी और वे छिपने की और

मोर्चा लेने की जगह ढूँढ़ने लगे। कुछ ही देर बाद चारों तरफ से भालू, बंदर, सियार, बाघ, बघेरे, साँप, बिच्छू, ततैया, मधुमक्खी, चील, बाज, हिरन, बारहसिंघा, लकड़बग्घा, ऊदबिलाव, गैंडे, भैंसे, जिराफ, हाथी निकल आये और भयानक गर्जनाएँ करते हुए राजा के सैनिकों को उठा-उठाकर इधर से उधर फेंकने लगे। जंगल के इस अचानक और अप्रत्याशित आक्रमण से राजा की प्रशिक्षित सैन्य टुकड़ी के भी पैर उख़डने लगे।"[4] इस अप्रत्याशित आक्रमण का उत्तर जंगल में आग लगा कर दिया जाता है, जिसमें मामा सोन (आचार्य शोण) के साथ-साथ उनकी धनुर्विद्या, वनवासी बच्चे और वन्य जीव जलकर राख हो जाते हैं। कथाकार ने बड़ी चतुराई से लिखा है -"कहनेवालों ने कहा कि बरसात के बाद वहाँ वन्य वनस्पति और ज़्यादा लहलहाकर फूटेंगी। कहने वालों ने यह भी कहा कि वनवासियों के बीच से ही एक दिन फिर कोई मामा सोन जन्म लेगा।"[5]

कथा का अंत निष्कर्ष सा प्रतीत होने के बावजूद अपने आप में एक नई कहानी का आरंभ सा लगता है- "आज मामा सोन के वंशज शहर में बांस की टोकरियाँ, तार के छींके और गत्ते के तोते चिडियाँ आदि बनाकर बेच रहे हैं।"[6] क्रमशः "सुना है उनके इलाके में कोई बड़ा बाँध बन रहा है, जिससे देश की बड़ी तरक्की होगी। मामा सोन के वंशजों और शिष्यों को जंगल से हकाल दिया गया है।"[7] यद्यपि कथा से गुज़रते हुए प्रतीत होता है कि कथाकार का उद्देश्य वनवासियों के विस्थापन की समस्या, उनकी कला, एकता, संसक्ति और सहज जीवन को रेखांकित करना रहा है, तथापि शोषक-शोषित के बने-बनाये सैद्धांतिक ढर्रे का ही सहारा लिया गया है। कथा अपने कलेवर और डिलिवरी में कलात्मक होने के बावजूद प्रश्न उपस्थित करती है कि जो साहित्य समाज में ध्वंस उत्पन्न करने की क्षमता से भरपूर हो, क्या वह सामाजिक स्वास्थ्य के लिए हानिकर नहीं होगी? हिंदी साहित्य में सैद्धांतिक दृष्टि से रूढ़ हो चुकीं इन 'रस्मी भ्रांतियों' का पटाक्षेप होना क्या समाजानुकूल एवं समयानुकूल नहीं है?

वैसे, कथा जहाँ समाप्त होती है, वहीं उसके नए आरंभ की गुंजाइश उभरकर आती है। यही गुंजाइश किंवदंतियों को जन्म देती है और कहा जाता है के लहज़े में कथा के विस्तार की सतत संभावना बनी रहती है। अंत में पाठक पीड़ामयी अनुभूति के साथ सोचने को बाध्य हो जाता है कि विकास के नाम पर बनते बाँध इत्यादि के कारण वनवासी अभिशप्त जीवन जीने को बाध्य हैं। कटते जंगलों से होनेवाले असंतुलन के प्रति कोई सतर्क नहीं और वनवासियों के प्रति कोई संवेदनशील नहीं। हैण्डी क्राफ्ट मेले में वनवासियों की भावनाएँ बिकती हैं और विडंबना यह कि इसी से उनका पेट पलता है। बिकी हुई वही चीज़ें शहरी घरों को सुशोभित करते हुए 'इन्डिजीनस' कहलाती हैं।

इस तर्क में 'राज्य-बनाम-वनवासी' का बना-बनाया पैटर्न उभर कर आता है। ऐसे पैटर्न पर लिखा गया साहित्य प्रायः एकांगी और कालबाह्य दृष्टि (विचारधारा) का बोध कराता है। निरंतर बढ़ती जनसंख्या, वैश्विक प्रतिद्वंद्विता, हर किसी का विकास के प्रति आग्रह इत्यादि अधिकाधिक संसाधनों की खोज और दोहन के लिए बाध्य करता है। एक प्रश्न यह भी उभरता है कि क्या यह सत्य नहीं कि वनवासियों के प्रति राज्य के रुख़ को सैद्धांतिक फ्रेम में कैद हिंदी साहित्यकार अत्यंत बर्बर रूप में दर्शाते हैं? साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में ऐसे प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाते हैं।

वैसे, प्रकृति-पर्यावरण को लेकर सबमें एक स्वाभाविक पीड़ा दर्शनीय है। हम भूलते जा रहे हैं कि जंगल का लगातार कटना पारिस्थितिक असंतुलन का सूचक है और वनवासियों का लगातार घटते-मिटते जाना समस्त कुरूप संभावनाओं का सूचक है। पिछले और इस वर्ष ब्राजील के अमेज़ॉन में कई बार जंगलदाह (दावाग्नि) के समाचार आते रहे हैं। यह पारिस्थितिक असंतुलन की दृष्टि से भयभीत करने वाली कुरूपता को दर्शाता है। मामा सोन के साथसाथ उस विशेषीकृत विद्या का जल कर राख हो जाना बौद्धिक संपदा के नष्ट होने को संकेतित करता है। हममें बिना परिश्रम के सब

कुछ एकसाथ पा जाने हेतु उत्पन्न हुई लालसा ने पारस्परिक असंतुलन उत्पन्न कर दिया है, जो हमें केवल पतन की ओर ले (जा रहा) जाता है। इसमें सबकी समान भागीदारी है।

इस संकलन की एक और कहानी 'कानदांव' मूलतः मित्रता और संबंधों में आ रहे गणितवादी रवैये को उजागर करनेवाली कहानी है परंतु कथा के आरंभ में कथाकार ने सूचना के युग का उल्लेख कर कहानी पर विचार-विमर्श का मार्ग सरल स्पष्ट कर दिया है। सूचना का युग में महीन मार करता हुआ व्यंग्य है। यद्यपि समस्त सूचनाएँ (बातें) विश्वसनीय नहीं होतीं परंतु हम सहज रूप से हर सूचना को विश्वसनीय मानते-समझते हैं। कानदांव में कथा दो मित्रों की है -बनिया और पठान! "दोनों का साथ ऐसा जैसे घी-शक्कर, पर किसी बात पर हो गई दोनों में अनबन और अनबन भी ऐसी कि मुँह पर तो मीठे-मीठे, लेकिन अंदर-अंदर एक-दूसरे की खाल खींचने को उतावले।"[8] दरअसल "बनिये पठान की दोस्ती से जलकर किसी ने पठान में फूँक भर दी कि बनिया हिसाब में डंडी मार रहा है और तुझसे ऐसे कागज़ों पर टीप मंडवा रहा है कि जिनसे एक दिन तेरी ज़मीन बनिये की हो जाएगी।"[9]

चूँकि सूचना का युग है तो मोटी बुद्धि वाले पठान ने बगैर सोचेसमझे तात्कालिक प्रत्यक्षता के आधार पर सूचना को विश्वसनीय मान लेता है और दोनों के सबंधों में तनातनी हो जाती है। संबंधों का मामला अत्यंत गंभीर है। एकबार टूट जाते हैं तो किसी फेविकॉल अथवा फेविक्विक से नहीं जुड़ते। जुड़ भी जाएँ तो गाँठ जीवनपर्यंत बनी रहे- "टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ परि जाय।" खैर, सूचना के इस भीतरबाहर फैले मायाजाल ने सबको अपनी ज़द में कर लिया है-"कहते हैं, किसी ज़माने में कोयल कुहू-कुहू बोलती थी और पपीहा पीहू-पीहू। लोग पहली रोटी गाय के लिए निकालते थे और आखिरी कुत्ते के लिए। मुसलमान की बेटी की शादी हो तो हिन्दू कन्यादान लेकर जाते थे और हिन्दू की बेटी की शादी हो तो मुसलमान जोड़ा लेकर।"[10]

व्यंग्यात्मक दृष्टि में हिंदूमुसलमान ऐक्य के आदर्श का उल्लेख कहानी में आता है। वास्तव में संकेत किया है कि सूचनासंचार ने तो दोनों को एकदूसरे का प्रतिद्वंद्वी (विरोधी) बना दिया है। ऐसी स्थितियों की ओर भी इंगित किया है कि हिन्दूमुसलमान प्रेमभाईचारे से रह ही नहीं सकते। रहने लग भी जाए तो संबंध अत्यंत नाटकीय लगने लगते हैं। ऐसी सूचनाओं का प्रचारप्रसार नाटकीय अंदाज़ में ही अधिक होता है। अतः विश्वसनीयता खोते मीडिया पर लगातार चर्चाएँ और वार्ताएँ होती (रहती) हैं।

इस कथा की सारी घटनाएँ बहुत ही स्थूल होने के बावजूद संवादों में सूक्ष्म भावस्थितियाँ मौजूद हैं। पठान को बनिए पर अविश्वास है और चूँकि उसे अपने बाजुओं पर गर्व है। अतः वह सारा हिसाब-किताब अखाड़े में तय करना चाहता है। कहानी की अंतर्यात्रा करते हुए सहज ही राजपाल यादव अभीनित कॉमेडी फ़िल्म कुश्ती का स्मरण हो आता है। उस फ़िल्म की भाँति कथा में भी तीव्र नाटकीयता और विनोदी स्थितियाँ मौजूद हैं। बनिया शरीर से दुर्बल (थुलथुल) परंतु बद्धि से कुटिल है और कुटिलता का चरम यह है कि कुश्ती के मैदान में बनिया पठान से कुश्ती की मैच फिक्सिंग कर लेता है- "हज़ार अशर्फियाँ चाहिए? सोने की?... तेरी सारी ज़मीन छोड़ दूँगा और हज़ार अशर्फियाँ ऊपर से दूँगा। सोने की बोल? चाहिए?... मैं लंगी लगाऊँगा, तू चित्त हो जाना। कुछ देर तड़पना और फिर बस... हज़ार अशर्फी तेरी, सोने की..."[11] और बनिया कुश्ती जीत जाता है।

कथाकार ने "इसे इतिहास की पहली मैच फिक्सिंग"[12] कहा है, और इसी को हिन्दी में 'कानदांव' कहा है। परंतु कथापात्रों की अपने हिस्से की ईमानदारी भी है। बनिया वादे (फिक्सिंग) के अनुसार पठान को हज़ार अशर्फियाँ देता है और तय होता है कि ज़मीन बनिए की ही रहेगी परंतु खेती पठान करेगा तथा आधा हिस्सा बनिये को मिलेगा। क्योंकि "ऊपर जाकर किसी को मुँह दिखाना है।"[13]

कथा के अंत में कथाकार ने निष्कर्ष रूप में

एक टिप्पणी की है - "इस महान सांस्कृतिक हरक़त ने हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच पीढ़ी-दर-पीढ़ी के लिए ऐसा सौहार्द, ऐसी समरसता, ऐसा भाईचारा, ऐसा इत्तिहाद पैदा किया कि अंग्रेज़ों को भी उसे तोड़ने में एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ा।"[14]

इस चिंतनधारा में व्यंग्योक्ति होने के बावजूद लोक की साधारणता को असाधारण रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास हुआ है। देशांतर्गत एवं सामाजिक परिवेश को सार्थक, सुदृढ़ एवं गौरवमय बनाने की दृष्टि से सौहार्द और समरसता ही उपचारक तत्व हो सकते हैं। स्वयं प्रकाश ने अपनी लोककथाओं में इसे प्रकारान्तर से रेखांकित किया है। लोककथा शिल्प की दृष्टि से देखा जाए तो कहना न होगा कि लोक के संसार की व्याप्ति असीम है और उसका कथ्य एवं शिल्प अपने पुरातन रूप के बावजूद रोचकता के संचार से लैस है।

निष्कर्ष

लाभवाद और अवसरवाद के इस समय में यदि कोई अपने हिस्से की इतनी भी ईमानदारी बचा ले तो संबंधों में उलझनें, गहरी विषण्णता, तीखा अवसाद और बिखराव आने से पहले उन्हें संभाला जा सकता है। स्वहित की कामना से बने संबंधों में अपने-आप ही दीवार ख़डी हो जाती है और फिर दरारों से संबंधों का फटा हाल दिखाई देता है। सूचना-संचार ने हमें विश्व के तमाम देशों से रू-ब-रू कराया है, परंतु अपनों से दूर ख़डा कर दिया है। सारे संबंधों का आधार 'पैसा' हो गया है और बहुत सरलीकृत वक्तव्य यह है कि 'बेहतरी के लिए बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं।' इसलिए एक एक पैसे की कीमत ज़्यादा लगने लगी है और संबंध सीमित एवं अनुदार। इस पैसा आधारित तंत्र (समय) ने जीवन एवं विचारों में ऐसी टकराहट उत्पन्न कर दी है कि व्यक्ति दिन ब दिन अत्यंत संकुचित होता जा रहा है। स्वयं प्रकाश ने अपनी कहानियों के माध्यम से विषय-वैविध्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कुछेक जगह वैचारिक अंधानुकरण के कारण कथा का फलक संकुचित हो जाता है। परंतु संकलन की कथाओं का पारायण एवं आस्वादन समसामयिक जीवन में बेहतरी की अपेक्षा से किया जा सकता है। साहित्य के साथ-साथ आलोचना का भी यही मापदंड होना चाहिए कि समाजोद्धार और राष्ट्रोद्धार के लिए वह किस प्रकार सहयोग कर सकती है। अंततः यही सच है कि वैचारिक चौखटेबद्ध रचना और आलोचना की प्रासंगिकता परिवेश परिस्थितियों में परिवर्तन के उपरांत क्षीण हो जाती है। रचनाकार और आलोचक को अपनी कालबाह्य वैचारिकी को तिलांजलि देकर देश और समाज (लोक) में सौहार्द एवं सामरस्य स्थापना हेतु 'मैच फिक्सिंग' कर लेना चाहिए और 'कानदांव' के बनिये की तरह अपने हिस्से की पूरी ईमानदारी भी रखनी चाहिए- देश और समाज (लोक) के प्रति।

संदर्भ

1. मेरी प्रिय कथाएँ, स्वयं प्रकाश; ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाज़ियाबाद; प्रथम संस्करण.2012, भूमिका
2. वही, पृ.13
3. वही, पृ.19
4. वही, पृ.19
5. वही, पृ.20
6. वही, पृ.20
7. वही, पृ.20
8. वही, पृ.21
9. वही, पृ.21
10. वही, पृ.21
11. वही, पृ.25
12. वही, पृ.26
13. वही, पृ.27
14. वही, पृ.27

◆ सहायक प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय
तिरुवारूर-610 101
ई-मेल -anandpatil.cutn@gmail.com
मोबाइल 9486037432

हरियश राय की कहानियों में सामयिक जीवन का चित्रण

♦ डॉ.सिन्धु.एस.एल

समकालीन जीवन को कहानीबद्ध करने में कुछ लेखकों में अद्‌भुत क्षमता है, हरियश राय उनमें से एक हैं । विषय से लेकर प्रस्तुति तक उनकी अनोखी क्षमता दीख पड़ती है। सामयिक जीवन के विभिन्न परिच्छेद उनके 'अन्न जल', 'सबह सवेरे', 'तुम तो ऐसे न थे', 'हिसाब किताब' आदि कहानियों में दृष्टव्य हैं। भारतीय समाज के जीवन के विभिन्न चित्र इन कहानियों में देख सकते हैं ।

हरियशराय की कहानी 'अन्न जल' समकालीन जीवन का संकट प्रस्तुत करती है । खेती खो जाने पर चिंतित पुरानी पीढ़ी और आधुनिकता के नाम पर शहरीकरण के पीछे जानेवाली नयी पीढ़ी के बीच का संघर्ष इस कहानी का विषय है। विकास की अवधारणा थोपकर,जनता को भटकाकर, गाँवों को शहरों में बदलाकर परिस्थिति की आत्मा पर कुल्हाड़ी मारनेवाले लोगों की संख्या अब बढ़ रही है। विकास का मतलब यह नहीं कि एक व्यक्ति को अपनी जगह से उखाड़ना, लेकिन आज के परिप्रेक्ष्य में ऐसा ही हो रहा है।

इस कहानी का मुख्य पात्र हरिसिंह चौधरी है। गाँव का अस्तित्व लूट जाने पर तनावग्रसित उनका पात्र अपने जीवन के भूतकाल की सुनहरी स्मृतियों में खोकर, वर्तमान जीवन की विसंगतियों को कोसने के दृश्यों से, समकालीन पारिवारिक और सामाजिक जीवन का चित्र पाठकों को दिखाता है। उनका स्मृतिपट इस तरह खुलता है, कुछ साल पहले तक चारों ओर खेत ही खेत थे। अपने खेतों में वे धान बोया करते थे। अब खेत गायब हो गये हैं। उनकी जगह बड़ी-बड़ी कोठियाँ बन गयी थीं। कैसे चारों तरफ ऊँची-ऊँची इमारतें बन गयीं और देखते ही देखते जिन पगड़ंडियों पर कभी गायों का झुंड धूल उड़ाता चलता था, वहाँ सड़कें बन गयीं और उन पर लंबी लंबी कारें चलने लगीं।"[1] गाँव में आये परिवर्तनों से हरिसिंह चौधरी का दिल बैठ गया है।

मानव के अंदर जो लालच है उसका लाभ उठाने में कंपनियाँ सफल होने के कारण गाँव बिक जाता है। अब चाहे हरिसिंह चौधरी जितना भी रोएँ, आँसुओं के चाहे जितने दरिया बहा दें, बेटों को चाहे जितना भी दोष दें ,पर सच तो यह है कि सहमति तो उनकी अपनी भी थी, लालच तो उन्हें भी आ ही गया था, ... "[2] लोभ में पड़कर पिता भी बच्चों की इच्छाओं के अनुसार खेत बेच दिए। वे अपने पुरखों की धरती में खेती करके ललित जीवन बितानेवाले थे, लेकिन विलायती कंपनियों के तूफान के सामने टिक नहीं सके। उनकी पत्नी ने कहा था कि खेत बेचना कोई अच्छी बात नहीं, पुरखों से अन्न जल देती आ रही है धरती माँ। लेकिन खेतों को बेचकर हरिसिंह के बेटों ने दूकानें खोल दीं और सारे रुपये धूमधाम से जीवन बिताने केलिए खर्च किये। हरिसिंह,अपने गाँव में आये परिवर्तनों में बहुत दुखी है, लेकिन युवा पीढ़ी की प्रतिनिधि के शब्द इस तरह हैं, "पूरी दुनिया में नाम रोशन हो गया गुडगाँव का । यह कम है क्या अब कंपनियाँ अन्न जल दे रही हैं, सतपाल के एक एक शब्द में उल्लास टपक रहा था।"[3]

हमारी मिट्टी बेचकर विदूर देशों से आनेवाली कंपनियों द्वारा मिलनेवाले रंग-बिरंगे जीवन के सपने में भटककर लोग अपना अस्तित्व ही नष्ट करते हैं। अन्न और पानी मिलनेवाली मिट्टी को बेचकर प्लास्टिक बोतलों में अन्नजल पाकर लोग एक भ्रम में पड़ते हैं। लेकिन इसकी मोहमाया के बंधन छूटने पर

अपने खोई हुई मिट्टी को वापस मिलने के विचार में पड़ते हैं। अंत में वे खेतों से भरे गाँव पुनः स्थापित होने की प्रतीक्षा में लगे रहते हैं। हरिसिंह इसका दृष्टांत है, कहीं से उन्होंने सुना था कि इन कंपनियों के खिलाफ कोई जुलूस निकलनेवाला है,वे भी इसमें भाग लेना चाहते हैं, मैं भी जलूस में जाऊँगा, गाँव के अन्न जल की खातिर।"[4] -इस कहानी में भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण के कारण आये पारिवारिक एवं सामाजिक परिवर्तनों को कहानीकार ने अंकित किया है। ये वैचारिक बिन्दुएँ हमें सोचने केलिए बाध्य रह जाती हैं कि मानव की लालसा और बहुराष्ट्र कंपनियों के हस्तक्षेप के कारण परिस्थिति को कितना सहना पड़ता है। वैश्वीकरण के कारण हमारे देश के किसानों की क्या हालत है, इसकी ओर यह कहानी पाठकों को ले जाती है। धरती ही हमें अन्न जल देती है। लेकिन मोहजाल में पड़े लोग इस सोच में पड़ते हैं कि मल्टी नैशनल कंपनियों से हमें सारी सुविधाएँ मिलेंगी। इस कहानी में पारिस्थितिक विध्वंस की समस्या के साथ-साथ वृद्ध जनता के तनाव, मानसिक संघर्ष आदि भी चीत्रित हैं।

हरियश राय की 'सुबह सवेरे' नामक कहानी पूर्ण रूप से वृद्ध समस्या पर आधारित है। इसमें कहानीकार ने अरुण रंजन वशिष्ठ नामक एक बूढ़े के जीवन की दुविधाओं को चित्रित किया है। युवा पीढ़ी किसी का मार्गदर्शन नहीं चाहती है। इस दृष्टि से भी घर में बुजुर्गों का स्थान नष्ट हो रहा है। जीवन के अंतिम पड़ाव में आकर अवांछनीय घटनाएँ होने पर वे बहुत अधिक दुखी होते हैं। अपने बच्चों का पालन करके बढ़ाने के बाद अब उनके बच्चों को बढ़ाने का दायित्व भी बूढ़ों पर छोड़ देते हैं, सारा दिन बच्चों की देख रेख में लगा रहता हूँ। "कभी एक बच्चे को स्कूल छोड़ने जाना है, कभी दूसरे को डाक्टर के पास लेकर जाना है ।कभी बाज़ार जाना है तो कभी बैंक जाना है। अपने लिए तो समय नहीं निकलता।"[5] जीवन के अंतिम पड़ाव में वे अपनी आशाओं की पूर्ति करना चाहते हैं। लेकिन पुत्रजन अपनी मस्ती भरी ज़िन्दगी की पूर्ति केलिए बुजुर्गों के ऊपर कई दायित्व छोड़कर भटकते रहते हैं। "चाहता तो मैं भी हूँ कि लद्दाख की बर्फीली हवाओं में घूमने जाऊँ, राजस्थान की तपती रेत पर चलूँ, गोआ के समुंदरों में अठखेलियाँ करूँ,चेरापूँजी की बारिश में भीगूँ। लेकिन बच्चे पीछा छोड़ें तब न। उन्होंने अपनी पीड़ा का बयान किया।"[6]

सारे बंधनों से मुक्त होकर स्वच्छंद जीवन बुढ़ापे की आवश्यकता है। अपनी शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं से परेशानी में पड़े बुजुर्ग हमेशा चैन चाहनेवाले हैं ।लेकिन युवा पीढ़ी के व्यवहारों के कारण तनाव ग्रसित ये आगे जीने की इच्छा भी छोड़ देते हैं । जिस परिवार का वह नायक था वहाँ अब अपने को सेवक महसूस करता है। उसे लगता है कि अपना अधिकार नष्ट हुआ है। दो पीढ़ियों के बीच के अंतरों को निपटाना आसान नहीं है। उसका आत्मसंघर्ष बढ़ता रहता है। रात के समय भी सोये बिना बेटे बहू की प्रतीक्षा में पड़े रहने केलिए विवश पिता का कथन इस प्रकार है, "कल रात बेटा और बहू पिक्चर देखने गये थे और मुझे उनके आने पर गेट जो खोलना था। सोता कैसे? यह कहकर गये थे कि बारह बजे तक आ जाएँगे। मैं उठ उठकर घड़ी देखता रहा, लेकिन आये ढ़ाई बजे, तब उसके बाद मुझे नींद नहीं आयी"[7] इस तरह के व्यवहारों से वृद्धों में चिन्ता, निराशा,उदासीनता,अकेलापन आदि बढ़ जाते हैं। आगे जीने की उनकी आशा भी छूट जाती है । बहुत जी लिया,अब और जीने की इच्छा नहीं करती।"[8] हमारे समाज में बूढ़ों की जो हालत है उसकी ओर कहानीकार इशारा करते हैं। हरिसिंह बढ़ों का प्रतिनिधि है।

हरियश राय की और एक कहानी है 'तुम तो ऐसे न थे।' यह कहानी उनकी सामजिक प्रतिबद्धता का द्योतन करनेवाली कहानियों में से एक है । अंधविश्वास के जाल में फँसनेवाले लोगों का खुला चित्रण करके, शिक्षित होने पर भी इन दुराचारों को आचार माननेवाले लोगों के दृश्य उन्होंने खींचे हैं। कहा जाता है कि

वैज्ञानिक दृष्टिकोण होने पर लोग अंधविश्वासों से मुक्त हो जायेंगे। लेकिन इस कहानी में खुद वैज्ञानिक तरुण कपूर अपने बेटे के नामकरण के समय पूजा, हवन आदि करवाते हैं। इस संदर्भ का चित्रण कहानीकार ने इस प्रकार किया है, "बच्चा गंडमूल नक्षत्र में पैदा होता है तो घर में शांति बनी रहे इस केलिए शांति पूजा और हवन करवाना ज़रूरी होता है।"[9]

इसके ऊपर बच्चे के पिता को भी दोष आने का डर पैदा करके पूजा, हवन आदि करवाने को घरवालों को विवश बनवाने की कुरीतियाँ आज भी हैं। पढ़े-लिखे लोग भी इससे मुक्त नहीं हैं ।

"कमाल है, आप लोग भी अब इन ग्रहों के चक्कर में फँस गये, सुरेश प्रसाद ने हैरानी से पूछा। फँसते तो नहीं,पर पंडितों ने डरासा दिया था। तरुण ने अभी अपने बच्चे की शक्ल भी नहीं देखी। हम लोगों ने बच्चे को तरुण से दूर ही रखा। आज हवन के बाद गंडमूल नक्षत्र का असर शान्त हो जाएगा ,तब तरुण बच्चे को गोदी में उठायेगा।"[10]

हमारे समाज के लोग अंधविश्वासों में विश्वास करके तसल्ली लेते हैं । ढ़ोंगे पंड़ितों के जाल में फँसकर लोग सकारात्मक दृष्टिकोण से अलग हो जाते हैं। तरुण के पिताजी भी शिक्षित होकर इस पूजा-हवन के पीछे पड़े हैं। इसलिए सुरेश प्रसाद पूछ्ते हैं, "आप ते पढ़े-लिखे हैं। आपने इन पंडितों की बात कैसे मान ली । आप खुद यूनिवर्सिटी में बायोविज्ञान पढ़ाते हैं।"[11]

उनका जवाब है कि "मानना पड़ता है क्योंकि मन में डर है। तरुण भी इस चक्कर में पड़ा है। पर तरुण,ये सब हवन, पूजा, पंडित यह सब क्या है और फिर तुम ज्योतिषियों के चक्कर में कैसे फँस गये। तुम तो ऐसे न थे। क्या गंडमूल, गंडमूल लगा रखा है। तुम तो सब जानते हो। तारों पर तुम ने शोध किया है।"[12]

तरुण यहाँ सारी पूजाओं का दायित्व अपनी पत्नी के परिवारवालों पर थोपकर अपने को परिवर्ति मानता है। वास्तव में उसका दृष्टिकोण सुधारात्मक नहीं है, रूढ़ियों से बंधित है। तरुण के गुरु सुरेश प्रसाद और उनकी पत्नी इस अनाचार और अंधविश्वास के विरुद्ध हैं। वे तरुण को इस तरह के अनाचारों से मुक्त करना चाहते हैं। लेकिन तरुण खुद इस अंधविश्वास के जाल में फँस गया है और मुक्ति पाना भी नहीं चाहता है। हमारे समाज के जटिल अंधविश्वासों में जन्मे और पले हुए लोग शिक्षित होने पर भी इसको एक सामाजिक व्यवस्था मानकर जीना ही पसंद करते हैं । जिस रूढ़ीगत समाज में एक व्यक्ति का जनम होता है, शिक्षा से उन बुराइयों से मुक्ति पाना था ,लेकिन न हो सकने पर वह तरुण जैसा पात्र बनकर जीता है।

हरियश राय की और एक कहानी है 'हिसाब किताब' जिसमें धनिक लोगों की हीन मानसिक व्यापारों का चित्रण किया गया है । इस कहानी का हीरा राजस्थान के अलवर के पास के गाँव का रहनेवाला था। एक गरीब आदमी है। उसके जीवन की विवशता कहानीकार ने इस तरह अंकित किया है, "गाँव में पानी नहीं था। सारी कुएँ और तालाबें सूख गयी थीं। जानवर मर गये थे। जमीन बंजर हो गयी थी। और वह गाँव छोड़कर शहर आ गया था।"[13] वह वहाँ काम कर रहा था। किसी न किसी तरह अपने जीवन के दो छोरों को मिलाने की कोशिश करनेवाले इसके सामने वीरसिंह चौहान और उनकी पत्नी शान्ति अपनी नृशंसता का परिचायक बनकर आते हैं। इनके घर में पुराने अखबार बहुत पड़े थे,चींटियाँ और काकरोच उसमें रहने लगे थे। बहुत रद्दी इकट्ठी हो गयी है , वीरसिंह चौहान और उनकी पत्नी शान्ति ये सब हीरा को बेचते समय काग़ज के नापतोल में धोखे देकर ज़्यादा रुपये हीरा से लेते हैं। विवश होकर हीरा को उनके कथन को मानना पड़ता है। वह दुखी होकर उनके घर से लौटता है। लेकिन वीरसिंह चौहान और उनकी पत्नी तब समस्या में पड़ जाते हैं, जब उनके घर से बू आने लगी। उन्होंने ढूँढ निकाला कि घर में एक चूहा मरा हुआ है। असह्य बू के कारण घर में रहना दोनों को मुश्किल हो गया। चौकीदार

उनके घर आने केलिए तैयार नहीं होने के कारण चूहे को निकालने में दोनों को काफी परेशानियाँ हुईं। समय बीत गया। लेकिन यह काम करने केलिए किसी को नहीं मिला । जिस हीरा को पुराने अखबार देते समय दोनों ने धोखा दिया था उसी को ही चूहे की लाश को निकालने का काम देने केलिए वे विवश होते हैं। इस समय उनके व्यवहार में वे काफी परिवर्तन लाते हैं । हीरा को बेटा सबोधित करके अपने कार्य को चलाना वे चाहते हैं। लेकिन हीरा मज़दूरी के रूप में पाँच सौ रुपये माँगता है। इस पर वीरसिंह चौहान और उनकी पत्नी शान्ति दंग रह जाते हैं। "दिमाग तो तुम्हारा ठीक है ज़रा से काम केलिए पाँच सौ रुपये।" वीरप्रताप ने कहा। "देखे हैं कभी तुम ने पाँच सौ रुपये।" -शांति ने कहा।"[14] लेकिन हीरा को पाँच सौ रुपये देने के अतिरिक्त इनके सामने और कोई रास्ता नहीं था कि चूहे को घर से निकाल दिया जाए। उसको पाँच सौ रुपये मिले । हीरा खुश हो गया। हँसने की इच्छा हुई ,लेकिन दबा गया। यह उसकी जीत थी। उसका हिसाब किताब बराबर हो चुका था।

वीरसिंह और उनकी पत्नी एक गरीब आदमी का शोषण करने में मज़ा लेनेवाले हैं । कुंठाओं से भरा उनका मन समाज के अन्य लोगों की ओर देखता भी नहीं। हमारे बीच में ऐसे बहुत सारे लोग हैं जो अपने आर्थिक स्तर से निम्नवालों को पहचानता भी नहीं। वे हमेशा अपने में ध्यान देनेवाले हैं। यह कहानी हमारे समाज की मानसिक विद्रूपताओं का निशान है ।

अज्ञेय ने कहा है, मानव जीवन एक खंभे से दूसरे खंभ तक रस्सी से होनेवाली एक यात्रा है। इस सफर में कई अनुभवों को भोगना पड़ता है, सामना करना पड़ता है ,देखना पड़ता है। ये अनुभव ही कहानी के विषय बनते हैं और पाठकों के सामने अक्षरबद्ध बनकर प्रकट होते हैं। हरियश राय ने अपनी कहानियों के द्वारा सामयिक जीवन की विभिन्न परछाइयाँ चित्रित करके हिन्दी कहानी क्षेत्र में अपना एक अलग स्थान अंकित किया है। उनकी ये कहानियाँ जीवन के अलग-अलग अनुभव चित्र हैं। इनसे लोगों के मानसिक व्यापार और वैयक्तिक सामाजिक प्रक्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास लेखक ने किया है ।

आधार ग्रंथ

1. सबह सवेरे, हरियश राय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017

संदर्भ

1.सबह सवेरे पृ 1617
2.वही, पृ 16
3.वही, पृ 24
4.वही, पृ 26
5.वही, पृ 117
6.वही, पृ 118
7.वही, पृ 119
8.वही, पृ 123
9. वही, पृ 85
10.वही, पृ 8586
11.वही, पृ 86
12.वही, पृ 88
13.वही, पृ 126
14. वही, पृ 136

♦ अध्यक्षा,हिन्दी विभाग
के.के.टि.एम.सरकारी महाविद्यालय
पुल्लूट,कोट्टुडल्लूर, तृश्शूर, केरल राज्य।

सूचना : NET (हिन्दी) तथा Spoken Hindi
की कक्षाओं में प्रवेश पाने को
इच्छुक व्यक्ति संपर्क करें -
फोन : 9946253648, 0471 - 2332468

'एखाने अकाश नाइं' में प्रतिफलित पारिस्थितिक नारी विमर्श

♦ डॉ.षेर्लिन

'एखाने अकाश नाइं' मन्नू भंडारी की एक महत्वपूर्ण कहानी है। इसमें ग्रामीण एवं शहरी वातावरण के अंतर, रूढियों में बंधे व्यक्तियों की मनोदशा ,अंधविश्वास, एकाकीपन,आर्थिक विपन्नता आदि का चित्रण किया गया है। इस कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है जो बंगला गीत की एक पंक्ति है। 'एखाने अकाश नाइं'- यहां आकाश नहीं है अर्थात् कलकत्ता के घने नगर और घुटन भरे जीवन में खुला आकाश नहीं है। न यहां खुला आकाश है और न खुली हवा है ।

मन्नू भंडारी की इस कहानी को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहले भाग में कलकत्ता जैसे सघन अंधेर नगर के निवासी मुक्त वातावरण के लिए, खुली हवा और खुले आकाश के लिए छटपटाते हुए हम देख सकते हैं। दूसरे भाग में ग्रामीण जीवन के उन्मुक्त आकाश के नीचे घुटन भरा ऊब पैदा करनेवाले जीवन को हम देख सकते है।साथ ही साथ आधुनिक जीवन के संदर्भ में ग्रामीण और शहरी नारी के मनोभावों व छटपटाहट को भी हम देख सकते है।

कलकत्ता शहर में कुछ मित्र मंडली के सदस्यों से कहानी की शुरुआत होती है।इस मंडली के मुख्य, सदस्य हैं लेखा, दिनेश, शिप्रा, सुषमा,महेश, मेहरा माथुर, मीना आदि। लेखा इस कहानी की प्रधान कथापात्र है जो कलकता में रहती है,कॉलेज में काम करती है और हाल ही में अपना शोध प्रबंध पूरा कर चुकी है। कलकत्ता जैसे शहर की गर्मी शोरगुल, मोटर गाड़ी,असंख्य आबादी और अपने व्यस्त जीवन से लेखा त्रस्त हो गई थी। शहर के प्रदूषित वातावरण और काम के बोझ ने उसे रुग्ण बना दिया था। शिप्रा के स्कूल के उद्घाटन समारोह में सब दोस्त एकत्रित होते हैं। सब लेखा की काबिलियत के साथ-साथ उसके गिरते स्वास्थ्य की ओर भी इशारा करते हैं। उनकी मित्र मंडली में गर्मी और आबादी का जिक्र भी होता है। दिनेश प्रोग्राम के बीच गर्मी से त्रस्त होकर बाहर आने का जिक्र करता है तो शिप्रा कहती है "बाहर की हालत तो और भी बदतर है। यहाँ कम से कम पंखे तो हैं। टैक्सी के लिए इंतजार करने में मेरी तो आज जान ही निकल गई। आज तो बला की गर्मी है हवा एकदम बंद।"[1] प्रोग्राम में आए सुषमा भी वहाँ के आबोहवा का जिक्र करती है, 'अरे कलकत्ता की यही तो विशेषता है' और एकाएक ऊंचे स्वर में गा उठती है-

"शोनो बंधु शोनो प्राणहीन शहरेर इति कथा
ईटेर पांजोडे लोहार खाचाए दारुण मर्म व्यथा
एखाने आकाश नाय,एखाने बताश नाय
एखाने अंधगलीर नरक मुक्तिर व्याकुलता:"[2]

सुषमा के इस गीत के स्वर में स्वर मिलाकर सब गाने लगते हैं। एखाने आकाश नाय, एखाने आकाश नायः इसी गाने की तीसरी पंक्ति इस कहानी का शीर्षक बन गया। उद्घाटन समारोह समाप्त होकर लेखा और दिनेश घर पहुंचते हैं। लेखा की रुग्णता देखकर दिनेश चिंतित होता है। वह लेखा से कुछ दिन गाँव जाकर रहने का प्रस्ताव रखता है। "सोचता हूं न हो तो तुम कुछ दिनों को घर ही चली जाओ अम्मा को भी बड़ी खुश होगी और वहाँ की तो आब हवा ही ऐसी है कि एक बार मुर्दा भी जी उठे।"[3] दिनेश के प्रस्ताव पर लेखा अपने ससुराल चली जाती है।

इस कहानी में मन्नू भंडारी ने भारतीय नारी की नियति को विभिन्न संदर्भों में अंकित किया है। शहरों की ज़िंदगी आर्थिक पक्ष को सुदृढ़ करने में सक्षम है। महानगरों की भाग दौड़, गर्मी, प्रदूषण और घुटन जहाँ हमारे स्वास्थ्य के प्रति खतरा बनती जा रही है वहीं रोज़गार के अवसर पर आर्थिक स्वतंत्रता बनी रहती है।

लेखा जो कलकत्ता में रहती है वह आर्थिक रूप से सुदृढ़ है, अपने पैरों पर ख़डी है ,आत्मसम्मान के साथ जीती है और तो और अंधविश्वास और रूढ़ियों मे जकड़ी सास के नजरिए में भी उसका सम्मान है। ग्रामीण नारी खोखले आदर्शों की बलिवेदी पर चढ़कर अपनी समस्त योग्यताओं के बावजूद भी चूल्हा चौक कर रही है। उसका अंतर्मन सुंदर होने के लिए छटपटा रहा है। पर वह बुजुर्गों की दकियानूसी विचारों के कारण अपने जीवन के आक्रोश से जूझती फिर रही है। पर कोई सुनने वाला नहीं है। दूसरी ओर शहरी नारी है जो पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। वह पुरुष पर बोझ बनकर नहीं, बल्कि सहयोगिनी के रूप में कार्य करती हैं।

लेखा की एक सहेली है शिप्रा। कलकत्ता निवासी है। अपने पति हेमेंद्र से अलग होकर भी वह हिम्मत नहीं हारती। वह एक स्कूल खोल लेती है। पहले पहल शिप्रा को लेकर लेखा परेशान थी कि वह क्या करेगी। लेकिन लेखा उसकी हिम्मत पर दाद देती है "हिम्मत वाली लड़की निकली, आखिर स्कूल खोल ही लिया! मुझे तो आज भी वह दिन याद आता है जब हेमेंद्र से अलग होकर वह बीनू की गोदी में सिर रखकर फूट फूट कर रोई थी। जाने क्यों उस दिन लगा था कि बस अब यह ज़िंदगी भर यों ही रोती बिलखती रहेगी। पर कितनी जल्दी संभाल लिया उसने अपने आप को:"[4]

सुषमा भी लेखा की एक अच्छी सहेली है, जो कलकता में रहती है। वह अपनी इच्छा से महिम नामक युवक से विवाह करना चाहती है। घरवाले इस विवाह का विरोध करते हैं। लेकिन सुषमा शहर में पली-बढ़ी होने के कारण धैर्य संभाल कर अपने विवाह का दिन निश्चित कर लेती है और कोर्ट में विवाह के लिए आवेदन भी दे देती है।वह अपने साथ होने वाले ज्यादतियों का विरोध करती हुई कहती है "पिछले तीन सालों से मैं केवल घरवालों के लिए ही मर खप रही हूं। नौकरी के साथ दो दो ट्यूशन करके मैंने घर का सारा खर्च चलाया। अब पिंकी ने बी.ए पास कर लिया, तो अपनी बात सोचना शुरू किया। पर इन लोगों से इतना भी नहीं होता कि मेरी हँसी खुशी में भी साथ दे।"[5]

लेखा जब गांव पहुंचती है तो उसका सामना सास, चाची, गौरा और भाभी से होती है, जो ग्रामीण परिवेश में जी तो रहे हैं, लेकिन अज्ञानता तथा रूढ़ियों में जकड़ी हुई हैं। लेखा को गांव का खुला वातावरण बहुत भाता है। लेकिन उसे अपनी सास के रूप में गांव की जकड़ी मानसिकता का भी सामना करना पड़ता है। परिवार के सारे जन सुरेश, रमेश, गौरा,भाभी और देवरानी सब अम्मा के कुंती विचारधाराओं से त्रस्त थे । सास एक ओर लेखा को पढ़ी-लिखी होने की दाद देती तो दूसरी ओर अपनी खुद की बेटी गौरा की पढ़ाई लिखाई से परेशान है। कहने को सब साथ-साथ रहते हैं, परंतु किसी पर किसी का बस नहीं है। दिल की दूरियां बहुत बढ़ गई है। जब देखो तब एक दूसरे पर व्यंग बरसते हैं। लेखा की सास अंधविश्वासी भी है। वह लेखा को संतान होने के लिए नीम तले की पीर की ताबीज़ लाती है। वह लेखा से कहती है- "यहाँ एक पीर है। ,नीम के तले बैठते हैं तो उन्हें सब नीम तले का पीर ही कहते हैं। ऐसा ताबीज़ देते हैं कि बस! आज तक उनका ताबीज़ अकारथ नहीं गया । लोग दूर-दूर से आते हैं। पांच रुपया और एक गज लाल कपड़ा: सो तुम्हारा घर आबाद हो, बहुतेरे पांच रुपये आ जाएंगे।"[6] लेखा की सास ने अपने दोनों छोटे बेटों सुरेश और रमेश एवं अपनी अविवाहिता बेटी गौरा, बड़ी बहू एवं देवरानी को अपनी कुंति विचारधारा से परेशान कर रखा था। गौरा की पढ़ाई और उसके प्रेम प्रसंग पर सास अड़चन पैदा करती है और गौरा तंग आकर लेखा से विनती करती है- "आप मुझे अपने साथ ले चलिए भाभी। मैं भी कोई नौकरी कर लूंगी। यहाँ तो कभी पढ़ने-लिखने के लिए एक पत्रिका मंगा लो,तो जैसे सारे घर में तूफान मच जाता है। यही सब करवाना था, तो मुझे पढ़ाने लिखाने:"[7] लेखा की सास को गौरा के विवाह की चिंता है। वह दकियानूसी विचारवाली औरत है। अत: गौरा को नौकरी करने नहीं जाने देती। लेखा जब अपनी सास को समझाती है कि गौरा पढ़ी-लिखी है, नौकरी करेगी तो उसका समय

अच्छा बीतेगा और कुछ मदद भी हो जाएगी तब वह डपट पड़ती है और कहती है माफ करो बाबा हमें नहीं चाहिए ऐसी मदद!.... जवान लड़की, एक बार पैर घर से बाहर पड़ गया,तो फिर बाहर की ही हो रहेगी। आज और चाहे कुछ हो, कम से कम अपनी इज़्ज़त तो ओढ़े हैं। अब तो लगता है, मुंह दिखाने लायक भी नहीं रहेंगे। तुम कलकत्ता की बात छोड़ो। मैं कहती हूँ, इस बार भैया आए, तो इसका कहीं जुगाड़ बिठा दो।"[8]

लेखा की सास सारा का सारा दोष औरतों पर ही थोपती थी। नमिता सिंह ने ठीक ही कहा है "दरअसल औरत ही औरत का शोषण करती है। औरत ही औरत की दुश्मन है :"[9] चाचा दूसरी शादी कर लेते हैं, लेकिन इसका दोष भी चाची पर ही डालती है। जब लेखा चाची के लिए साड़ी लाती है तो लेखा की सास कहती है-"कोई जरूरत नहीं है उसे देने की। पहले ही मेरा तो सारा घर खाए बठी है चुड़ैल! मुकदमेबाजी कर रही है मरी उस तहसीलदार के साथ मिलकर। ऐसे लक्षण हैं तभी तो छोड़ रखा है खसम ने।मैं तो कहूँ लाख रुपए के हैं लालाजी, पर चुड़ैल ने उनकी जिंदगी हराम कर दी। हार कर उसने भी दूसरी कर ली। इत्ते पर भी चैन थोड़े ही है निगोड़ी को! यहाँ बैठी-बैठी मूंग दल रही है!"[10]

बड़ी बहू की ओर भी सास के तेवर अच्छे नहीं थे ।वह भी चौका चूल्हा कर कर के त्रस्त है ।लेखा की सास उसे कोसती रहती है। बहू बड़ी के लक्खन तो तुम देख ही रही हो। उठते-बैठते कोसती है। उसे तो घर के हम सब ज़हर लगे हैं। हमें तो भाई उससे अब कोई उम्मीद नहीं रही। अब तो तुम्हीं इस घर को ढर्रे पर लगाओ तो लगे। हम तो हार गए"[11]

सुरेश और रमेश भी अपनी अम्मा से तंग आ गए हैं। बात बात पर वे इन पर झिड़कती थीं। वे कहती हैं-"मैं पूछूं कि घरवालों ने तुम्हारा कर्जा खाया है जो दोनों जून रोटियों के मिस वसूलने आ जाते हो। सवेरे से निकले निकले लाट साहब अब चले आ रहे हैं !"[12] लेखा अपनी सास को समझाती है कि "वे बच्चे हैं। उनकी तो उम्र ही पढ़ने-लिखने की है।" इस पर वह डपट पड़ती है- "पढ़ते-लिखते क्या है,हम पर एहसान करते हैं। यह भले और उनकी किताबें भलीं। घरवाले इनकी बला से मरो, चाहे जिओ!"[13] सुरेश का चश्मा खराब हो जाता है, उसके सिर में दर्द रहता है, लेकिन उसे चश्मा बदलने के लिए तीन रुपये तक नहीं मिलते। सुरेश लेखा से प्रार्थना करता है कि लेखा उसे अपने साथ कलकत्ता ले जाए। वह कहता है- "भाभी, यदि मैं कलकत्ता आ जाऊँ तो क्या कुछ ऐसा प्रबंध नहीं हो सकता कि कुछ काम भी मिल जाए और पढ़ाई भी चलती रहे? वहाँ तो रात के कॉलेज हैं। उसी में पढ़ लिया करूँगा। मैं आप लोगों पर बोझ नहीं बनूँगा"[14]। इस प्रकार घर का घुटन भरा जीवन प्राकृतिक सौंदर्य को धकेल देता है एवं प्रकृति की समस्त हरियाली को फीका कर देता है।

मन्नू भंडारी ने प्रस्तुत कहानी में मध्यवर्गीय अभावग्रस्त परिवार का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। नगर में बाहर के आकाश में घुटन है और भीतर का आकाश उन्मुक्त है, गाँव में बाहर का आकाश उन्मुक्त है, परंतु भीतर का आकाश अवसाद से भरा है। दोनों वातावरण में रहनेवाला व्यक्ति अनुभव करता है 'एखाने आकाश नाइं'।

संदर्भ

1.मन्नू भंडारी श्रेष्ठ कहानियां, प्रकाशक-अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली; संस्करण 1975 जनवरी,पृ.सं..95

2. वही,पृ.सं.95 3.वही,पृ.सं.96

4. वही,पृ.सं.88 5.वही,पृ.सं.89

6. वही,पृ.सं.111 7. वही,पृ.सं.106

8. वही,पृ.सं.103

9.आज़ाद औरत कितनी आज़ाद; संपादक शैलेंद्र सागर और रजनी गुप्त; सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली,पृ.सं..69

10 वही,पृ.सं.99 11.वही,पृ.सं.102

12. वही,पृ.सं.100 13. वही,पृ.सं.103

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर
सरकारी संस्कृत कॉलेज
तिरुवनन्तपुरम

'सज़ा'- बेगुनाहों की यातना का वृत्तांत

♦ डॉ.सी.बालसुब्रह्मण्यन

सार - स्वाधीनोत्तर हिन्दी साहित्य में सुधी सहृदय पाठकों को मन्नू भंडारी का परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाना जैसा होगा। अपनी प्रकांड प्रतिभा के बल पर अत्यंत वैविध्यपूर्ण विषयों को समेटकर रचित 'आपका बंटी', 'महाभोज' जैसे उपन्यास 150 से अधिक कहानियाँ, नाटक, पटकथा, बाल साहित्य आदि इस बात के निदर्शन है। 'सज़ा' मन्नूजी की एक बहुचर्चित श्रेष्ठ कहानी है जिसमें न्याय प्रणाली को विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया है। पूर्वदीप्ति शैली में लिखित आद्यंत मनोवैज्ञानिक तत्वों से भरी पड़ी प्रस्तुत कहानी का विषय सरकारी गैरसरकारी कार्यालयों में अक्सर घटित होनेवाला कार्य है। एक परिवार के कर्ता या मुखिया पिता को अपने दफ़्तर में गबन के झूठे आरोप में फँसाकर सज़ा दी जाती है, निचली अदालत के फैसले के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील मंजूर करवाते हैं, निलंबित कर दिया जाता है, मुकदमा होता है, न्याय व्यवस्था की लंबी प्रक्रिया के बाद निर्दोषी साबित होता है और अंत में मुक्त हो जाता है। इस विषय को लेकर अपनी प्रखर प्रतिभा से निःसृत शब्दों से मन्नूजी ने एक अत्यंत संवेदनशील श्रेष्ठ कहानी की सृष्टि की है।

बीज शब्द - सज़ा, न्याय व्यवस्था निर्दोष।

'सज़ा' कहानी का आरंभ और उत्तरोत्तर विकास झूठे आरोप में फँस गए पिता अर्थात् दिनेशजी की किशोर बेटी आशा की चिन्ताग्रस्त मानसिकता से उभर आई यादों के माध्यम से होता है। आशा के परिवार में कुल चार लोग हैं - पिता दिनेशजी, माता शारदा, स्वयं आशा और छोटा भाई मुन्नू। उमेश चाचा, कान्त मामा, लीला चाची, दादा, दादी, टिल्लू, पम्मी, बिटू आदि परिजन भी कहानी के पात्र हैं। ये हाडमाँस के पात्र हैं तो पूरी कहानी में आद्यंत एक अदृश्य खलनायक पात्र के रूप में व्यवस्था खासकर न्याय व्यवस्था पसरी पडी है। इस व्यवस्था के अष्टभुजी चंगुल में फँस गए हैं आशा के पप्पा। व्यवस्था एक तंत्र भी है यंत्र भी। व्यवस्था रूपी तंत्र-यंत्र में किसी को भी झूठा इलज़ाम लगाकर फँसा सकते हैं, अपराधी बना सकते हैं और किसी गुनहगार को भी विशिष्ट सेवा का सम्मान-पुरस्कार प्रदत्त कर सकते हैं। 'अंधेर नगरी चैपट राजा' की स्थिति एक सर्वकालीन सच्चाई होने के कारण अपराधी को शरीफ आदमी बनाना और शरीफ आदमी को अपराधी बनाना व्यवस्था की खासियत है या उसका कसूर है। व्यवस्था रूपी तंत्र-यंत्र के इस कसूर के संबंध में कहानी के पात्र कांत मामा कहते हैं -'आज के ज़माने में तो गुनहगार अपने को साफ बचाकर ले जाते हैं। लाखों हज़म करके मूँछों पर ताव देते घूमते हैं। फाइलें की फाइलें गायब करवा देते हैं।' आगे के वाक्य में वे आरोप में फँस गए आशा के पप्पा के बारे में कहते हैं और एक ये हैं बिना गड़बड़ किए सज़ा भोगने जा रहे हैं। साफ है कि आशा के पप्पा ईमानदार, आत्म सम्मान के प्रति अत्यंत सजग धैर्यवान शरीफ शख्सियत के अधिकारी हैं। मुकदमे के पहले फैसले से वे आहत हो जाते हैं और उस सदमे से उन्हें खुद संभालना बहुत कठिन लगता है। ऐसे एक व्यक्तित्व के अधिकारी होने के कारण ही वे निलंबन की अवधि में मिलनेवाली आधी तनख्वाह लेने से इनकार कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप उन्हें कठिन आर्थिक स्थिति का सामना करना पड़ता है।

आशा के पप्पा को दो साल की सज़ा मिलने पर कान्त मामा निचली अदालत के फैसले के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील मंजूर करवाते हैं। पच्चीस दिनों के बाद वे जेल से छूटकर आए। कान्त मामा चाहते थे कि

मुकदमे की सुनवाई जल्दी-जल्दी हो। लेकिन ऐसा संभव नहीं हो सका। एक साल में महज दो सुनवाई ही हुई थी। दिनेश जी के परिवार की एकमात्र आमदनी उनकी अपनी तनख्वाह ही थी। निलंबन के दौरान मिलनेवाला आधा वेतन लेना इनकार करने से परिवार की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। निलंबन के दिनों में खर्च की वजह से बैंक का सारा रुपया निकल गया, आशा की अम्मा के सारे गहने बिक गए। मुकदमा चलाने हेतु लुटेरे वकीलों को बहुत पैसा देना पड़ा। परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाने से, आमदनी बंद होने से घर में मनहूसियत छा जाती है, संबंधों की ऊष्मलता नष्ट हो जाती है, परिवार तितर-बितर हो जाता है। पहले नीचे का घर खाली कर देते हैं। लाडला बेटा मुन्नू को पढ़ाई के लिए पहले दादा-दादी के पास गाँव भेज दिया जाता है और तदुपरांत उमेश चाचा के यहाँ। आशा की पढ़ाई मेट्रिकुलेशन के बाद बंद हो जाती है और वह भी मुन्नू को तसल्ली देने के लिए उमेश चाचा के घर चली जाती है और वहाँ नौकरानी की तरह दिन-रात घर का सारा काम करती रहती है। इस संकटपूर्ण स्थिति में घर का काम और मानसिक व्यथा सहते-सहते माँ शारदा का स्वास्थ्य बिगड जाता है और स्थायी रूप से राजयक्ष्मा की बीमार बन जाती है। कान्त मामा उन्हें चिकित्सा के लिए अपने साथ ले जाते हैं। स्थिति और शोचनीय होने के कारण पप्पा मकान खाली करके एक गंदगी से भरी मज़दूरों की बस्ती में रहने के लिए मजबर हो जाते हैं। वे अकेले हो जाते हैं। सीलन भरी अँधेरी कोठरी में सबसे मुँह छिपाकर रहते हैं। उनके साथ न तो बच्चे हैं न पत्नी। एक बेगुनाह व्यक्ति को इससे बड़ी सजा और क्या हो सकती है! आशा के पप्पा ने उमेश चाचा के नाम भेजे गए पत्र कार्ड पर अपनी जान से अधिक प्यारे बच्चे आशा और मुन्नू के बारे में एक लाइन, एक शब्द तक नहीं लिखा है। उन्होंने सिर्फ फैसले की तारीख की सूचना दी है। पप्पा की मानसिक स्थिति मुकदमे के पाँच सालों की अवधि में इतनी बदल गई है। असल में वे अपने बाच्चों से बेहद प्यार करते थे। लेकिन इस गबन के झूठे मामले में फँस जाने से, निलंबन होने से वे इतने बदल गए हैं कि उस बदलाव का बुरा प्रभाव आशा, मुन्नू, अम्माँ, बाबा, दादी, कान्त मामा सब लोगों के जीवन पर पड़ा है। दूसरी ओर पाँच साल एक छोटी अवधि नहीं है। पाँच साल एक बेगुनाह व्यक्ति को, उनके परिवारवालों को मर्मान्तक यातना भोगनी पड़ती है। यह हमारी न्याय व्यवस्था का दोष है।

न्याय व्यवस्था के कसूर के कारण बेगुनाह लोग ही यातना से गुज़रते हैं। शीघ्र फैसला न होना बेगुनाह लोगों के लिए यातनामय सज़ा ही है। मुकदमे के फैसले का इन्तज़ार अत्यंत यातनापूर्ण स्थिति है। समाज उस व्यक्ति को एक अपराधी के रूप में देख लेता है और बाहरी तौर पर झूठी हमदर्दी दिखाते हैं। आशा के पप्पा के बारें में उसकी सहेलियाँ दबी-दबी ज़बान में यों कहती हैं 'इतने बड़े लोग भी चोरी करते हैं?' बाहर के लोग ही क्या लीला चाची तक आशा के पप्पा के संबंध में इस प्रकार की घिनौनी टिप्पणी करती है। 'ऑफिस के बीस हज़ार गायब करके गाड़ दिए और हमारा खून चूस रहे हैं। ये हमारे बड़े हैं। लानत है ऐसे बडप्पन पर।' आशा यहाँ तक सोचती है कि "इससे तो पापा सचमुझ ही ऑफीस का रुपया मार लेते तो अच्छा होता।" आशा के पप्पा बरी हो गए थे। अब उन पर कोई आरोप नहीं था। किंतु लंबी कानूनी प्रक्रिया ने सभी दृष्टियों से उनके और उनके परिवारवालों के जीवन को तहस-नहस कर डाला था। 'सज़ा' कहानी एक प्रश्न की ओर तर्जनी उठाती है कि बेगुनाह व्यक्ति को इतने वर्षों बाद न्याय मिलना क्या किसी सज़ा से कम है? हकीकत यह है कि उस व्यक्ति पर आश्रित पूरा परिवार बेहद दुख और त्रास का सामना करता है और यही उनकी सज़ा बन जाती है। आशा के पप्पा के लिए रिहा होना भी किसी यातना से कम नहीं। दरअसल वे लंबी कानूनी प्रक्रिया की यातना झेलकर बेगुनाह होकर भी अपनी सज़ा काट आए थे।

दुनिया की कोई भी अदालत इतनी यातना झेलने की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकती थी। इसलिए कहानी के अंत में वे एकदम भावहीन होकर एक प्रकार से निर्मोही बन गए हैं। आशा के पप्पा बेगुनाह थे तो उन्हें और उनके परिवार वालों को इतनी लंबी मर्मान्तक यातना क्यों दी गई? इतने अपमान का सामना क्यों करना पड़ा? इन प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं। इस कहानी में बेगुनाह प्राणियों की मर्मभेदी व्यथा उसकी संपूर्ण तीव्रता के साथ अंकित करने में मन्नूजी अत्यंत सफल हुई हैं साथ ही साथ विसंगतियों और विडंबनाओं से भरी न्याय व्यवस्था पर प्रहार करने में भी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अपनी अन्य कथा रचनाओं की भाँति 'सज़ा' कहानी में भी मन्नू भंडारी ने एक ज्वलंत वर्तमान समस्या उठायी है। वह है न्यायालय की समस्या। निर्दोष व्यक्ति को अपराधी मानना निलंबित करना, लंबी कानूनी प्रक्रिया के दौरान उसके परिवार का तहस-नहस होना, विलंब से होनेवाले विधि निर्णय में उसे निरपराध घोषित करना आदि वर्तमान न्याय व्यवस्था की सच्चाई है। निरपराध होकर भी दोषारोपित व्यक्ति और उसका परिवार एक लंबी अवधि में दुख और तनाव सहते रहना, त्रासदा स्थितियों का सामना करते रहना 'सज़ा' ही है।

संदर्भ :-

(1) मन्नू भंडारी, यही सच है (कहानी संकलन), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली : 1966

♦ सह आचार्य,
हिन्दी विभाग,
सरकारी विक्टोरिया कॉलेज,
पालक्काड।

समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी स्वर

♦ डॉ.अंबिली.टी

सारांश- आदिवासी शब्द से तात्पर्य है मूल निवासी। आदिवासी जनजाति एक सामाजिक समुदाय है, जो विशिष्ट भाषा बोलता है, जिसकी अपनी अलग संस्कृति होती है। भारत को आज़ादी मिले इतने वर्ष बीत गये। फिर भी यह आदिवासी समुदाय प्रगति के पथ से बहुत दूर अंधेरे जंगलों में भटकता रहता है। व्यावसायीकरण एवं वैश्वीकरण ने जंगलों को अत्यधिक प्रभावित किया है। जंगल में आदिवासियों का शोषण चलता रहता है। सन् 1970 के बाद सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में प्रतिशोध की एक नयी मानसिकता उभरकर आयी है। समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी जीवन को व्यक्त करनेवाले प्रमुख कवियों में हरिराम मीणा, ज्ञानेंद्रपति, विनोद व्यास, अनुजलुगुन, संजीव बख्शी, कुमारेंद्र पारसनाथ, निर्मला पुतुल आदि प्रमुख हैं। आदिवासियों को अपनी अस्मिता को सजग करने और अपनी चेतना को जागृत कर अपने ऊपर होनेवाले अमानवीय शोषणों के खिलाफ लड़ने का आह्वान समकालीन आदिवासी कविता में बुलन्द है।

बीज शब्द - आदिवासी, व्यावसायीकरण, विरासत, कुटीर उद्योग, मूल निवासी, प्रतिशोध, अमानवीयता

'आदिवासी' शब्द से तात्पर्य है 'मूल निवासी'। आदिवासी जनजाति एक सामाजिक समुदाय है, जो विशिष्ट भाषा बोलता है, जिसकी अपनी अलग संस्कृति होती है। आदिवासी को वन्यजाति, गिरिजन, जनजाति, वनवासी आदि भी कहा गया है। भारत की जनसंख्या

का एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है। संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जन जाति पद का उपयोग किया गया है।अंग्रेजी में आदिवासियों के लिए primtive, indigeneous और savage शब्द प्रयोग में हैं,जिनके अर्थ हैं आदि, अप्रगत, भोले-भाले और पिछड़े लोग।

आज का आदिवासी समाज राजनीति के चक्रव्यूह में फँस गया है। उन लोगों की हालत अत्यंत शोचनीय है कि वे जो कुछ चाहते हैं उसे प्राप्त नहीं कर सकते। यह समाज राजनीति के चंगुल में पड़कर दिशाहीन हो गया है। भारत को आजादी मिले इतने वर्ष बीत गए। फिर भी यह आदिवासी समुदाय प्रगति के पथ से बहुत दूर अंधेरे जंगलों में भटकता रहता है। इस समुदाय के लिए विकास का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। उनका जीवन तो संघर्षमय
परिस्थितियों से गुज़र रहा है।

व्यावसायीकरण एवं वैश्वीकरण ने जंगलों को अत्यधिक प्रभावित किया है। जंगल में आदिवासियों का शोषण चलता रहता है। इन निरीह प्राणियों के जीवन को हड़पने का षड्यंत्र चल रहा है। सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आदिवासियों को जंगल से विस्थापित करने के प्रयत्न में हैं। आदिवासी स्त्रियाँ भी शोषण तंत्र में पड़ने में अभिशप्त हैं। आदिवासी समाज अपने पुश्तैनी कुटीर उद्योग में समर्थ हैं। लोहारगिरी, मधुमक्खी पालन, रस्सी-चटाई बुनना जैसे काम उन्हें विरासत में मिले थे। खुले बाज़ार ने उनके इन पारंपरिक कुटीर उद्योगों को सत्यनाश कर लिया था।

सन् 1970 के बाद के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में प्रतिशोध की एक नई मानसिकता उभरकर आई । समकालीन साहित्य समाज के लिए पूर्णतया समर्पित हो गया है। अब हाशिएकृत जनता, केंद्र में आई। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में आदिवासी विमर्श को सर्वाधिक महत्व मिला है। समकालीन हिन्दी कविता आदिवासी जीवन की वास्तविकता का सच्चा चित्र खींचती है। हिंदी कविताओं में आदिवासी विमर्श अपनी अलग पहचान लेकर अपनी समस्याओं के साथ उभरा है। यह आदिवासी जन आंदोलन अपने मन में समाज के प्रति असंतोष की भावना लिए हुआ है। सदियों से हमने जिन आदिवासियों को साहित्य एवं समाज से दूर रखा, वही आदिवासी मानव समुदाय अपनी मुक्ति के लिए आज साहित्य के युग में प्रवेश कर रहा है। अपने हक़ की लड़ाई के लिए उसने अपने पारंपरिक हथियार तीर और कमान छोड़कर कलम उठा ली है।

आदिवासी चिंतन का मतलब है आदिवासियों के अस्तित्व और अस्मिता पर विचार एवं चिंतन करना। हिंदी साहित्य में आदिवासी समाज का चिंतन एवं लेखन बीसवीं शताब्दी के मध्य से प्रारंभ हुआ और यहीं से जो आदिवासी समाज हाशिए पर था, उसे मुख्य धारा में लाने का प्रयास आरंभ हुआ। हमारा भारत तो आज विकास की ओर अग्रसर है। पर भारत के आदिवासी तो अविकसित हैं। आदिवासियों के विकास के लिए करोड़ों रुपये मंजूर हुए हैं। फिर भी इनकी दशा में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी जीवन को व्यक्त करनेवाले प्रमुख कवियों में हरिराम मीणा, ज्ञानेंद्रपति, विनोद व्यास, अनुजलुगुन, संजीव बख्शी, कुमारेंद्र पारसनाथ, भुजंग मेश्राम, रामदयाल मुंडा, सरितासिंह बडाईक, वेरियर एलबिन, निर्मला पुतुल, लक्ष्मीनारायण पयोधि, विनोदकुमार शुक्ल, महादेव टोप्पो आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आज तो वैश्विक पूंजी स्त्री राक्षस निरंतर मानव को दमित करने में व्यग्र है। नव साम्राज्यवाद तो परंपरागत जीवन शैली में रहनेवाले आदिवासियों के विस्थापन का नया तंत्र बुन रहा है। इसी कारण मनुष्य का अस्तित्व और उनका परंपरागत ज्ञान और भाषाई अस्मिता के लिए भी यह खतरनाक है।

नव मध्यवर्ग एवं नव धनिक वर्ग दोनों तटस्थता की नीति एवं उपभोग की जीवन पद्धति में तल्लीन हैं। ऐसे लोगों को कवि हरिराम मीणा सचेत करते है:

"एकांत को प्रानना चाहिए कोई विकल्प
विराट ऊर्जा का स्रोत.....।
वे ऐश्वर्य ओढकर सोते हैं निश्चिंत।
हम संघर्ष की सूली पर चढ़कर,
भविष्य के आकाश में तलाशते हैं।
स्वयं का परिचय और स्थान
तनिक सोचो,
इस निर्जन एकाकी कारा में भी,
मैं कहाँ हुआ निरुत्साहित?"[1]

आदिवासी के लिए जंगल ही सबकुछ है। जंगल के प्रति उसके प्यार और लगाव को कवि रामदयाल मुण्डा इस प्रकार प्रकट करते है:

"मेरे ही सामने उस दिन ठेकेदार साहब ने
नागों की झोंपड़ी को देखकर
अपने इंजीनियर साथी से कहा था।
बेवकूफ है साले, टिम्बर से घिरे हैं पर,
ढंग का मकान बनाने की भी अक्ल नहीं आई।" [2]

आदिवासियों के विकास के जो मानक, सरकार या व्यवस्था द्वारा निश्चय किए गए, उनका प्रतिरोध समकालीन कवि करते हैं। वास्तव में ये विकास के मानक, निरीह आदिवासियों के जन जीवन के विकास में सहायक नहीं। भोले भाले लोगों के जीवन में हस्तक्षेप, उनकी स्वायत्तता में दखल देने के लिए अपनाए गये हैं। कवि ज्ञानेंद्रपति की पंक्तियाँ देखिए:

"इस आदिवासी गाँव के आँगन से गुजरी हुई यह सड़क,
अत्याचारियों के गुज़रने का रास्ता है।
यह इनके पैरों से नहीं,
यह इनके पैरों के लिए नहीं बन।
बड़े-बड़े रोड रोलर आए थे लुटेरे वाहनों के आने से पहले चरमी कँपा ने धीरे धीरे चलते हुए विशालकाय रोड रोलर।"[3]

अधिकारी वर्ग वास्तव में आदिवासियों के कल्याण के लिए कुछ भी नहीं करते। यह तो इनके विरुद्ध कुकृत्य करते हैं। कवि विनोदव्यास इसका जिक्र करते हैं:

"यही वह वक्त होता है
आती है शहर से एक जीप,
उड़ाती हुई धूल हमारी इच्छाओं पर,
उतरते हैं टाई पहने साह
हुकुम देते हैं हम देखेंगे नाच।
हम नाचते हैं कसते हैं वे फब्तियाँ
भूली यातनाएँ प्रकोप और जंगल,
याद आने लगते हैं हमें फिर,
सुप्राह होती हैं पड़ी मिलती हैं प्रांगले में
हमारे कुनबे की बेसुध लड़कियाँ।
उनके देह पर चमकते हैं
दाँत और नाखून के उभरे निशा
दिन के उजाले में।" [4]

आधुनिकता ने आदिवासी समाज के सामने संकट उपस्थित किया है। यह तो पश्चिमी दृष्टि पर आधारित है। पश्चिमी अवधारणा में मानव, प्रकृति से दूर है। पर भारतीय दृष्टि प्रकृति के साथ मानव के सह अस्तित्व पर विश्वास रखती है। प्रकृति से आदिवासियों का नैसर्गिक संबंध है। इन लोगों की जीवन-दृष्टि में जंगल, ज़मीन, जल, पशु, पक्षी, जीव, पेड़ पौधे, हवा, रोशनी, सूरज, चाँद, आकाश, पाताल, नक्षत्र ये सभी अपना जीवन जीते हैं। आदिवासियों के पास औषधियों के बारे में दुर्लभ ज्ञान है। प्रकृति से लगाव, स्त्री-पुरुष संबंध, समत्व, अतिथि सत्कार आदि इनके स्वभाव की विशेषताएँ हैं। इस संदर्भ में डॉक्टर वेरियर एल्बिन कहते हैं :

"मैं यह कहने के लिए लालायित हूँ कि
लोक कथाएँ फलतः आदिम कला के रूप में"[5]

आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल मूलतः संथाली भाषा की कवयित्री है। उनका चर्चित काव्य संग्रह है 'नगाड़े की तरह बजते शब्द।' यह तो आदिवासी जीवन

का सही दस्तावेज़ है। कवयित्री की कविताएँ प्रश्नचिह्न लगाती रहती हैं। ये अपने समाज के विरुद्ध लड़ती ही नहीं, बल्कि अपने समाज में बसते ढोंगियों के विरुद्ध भी लड़ती हैं। आदिवासियों का प्रधान ही आदिवासी लड़कियों का सौदागर बन जाता है तो पुतुलजी आक्रोश करती हैं:

"कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान?
जो सिर्फ एक बोतल देशी दारू में रख देता है
पूरे गाँव को गिरवी।
और ले जाता है कई लड़कियों को गट्ठर की तरह
लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को,
हजार पाँच सौ हथेलियों पर रखकर। "[6]

निर्मलाजी ने आदिवासी शोषण से संबंधित सभी आयामों को एवं आदिवासी जीवन के विकास के स्वर को हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है यह देखिए:

"चाहती हूँ मैं
नगाड़े की तरह बजे
मेरे शब्द.
और निकल पड़े लोग.
अपने घरों से सड़कों पर।"[7]

सभ्य कहे जाने वाले लोग कहते हैं कि आदिवासियों के खानपान, वेशभूषा और जीवन रीति सब जंगली और असभ्य हैं। इनसे घृणापूर्ण व्यवहार भी लोग करते हैं। पर आदिवासी लड़कियों के शरीर का शोषण करने में वे अत्यंत तत्पर हैं। इन लोगों का उपहास हरिराम मीणा अपनी कविता 'आदिवासी लड़की' में करते हैं[8]:

"सपना रंगीन चश्मा उतारकर देखो,
लड़की की गहरी नाभि के भीतर,
पेट की भूख में सिकुड़ी उनकी आहों को।
सुनो उन आँतों का आर्तनाद,
और
अभिव्यक्त करने के लिए,
तलाशो कुछेक शब्द अपनी भाषा में। "[8]

सरितासिंह बड़ाईक झारखंड की आदिवासी कवयित्री हैं। वे अत्यंत दुःखी हैं कि जंगलों का नाश हो रहा है। विकास के नाम पर गाँवों का नाश होता जा रहा है। कवयित्री जानती हैं कि ढोंगी दलाल वर्ग भोलेभाले आदिवासियों को धोखा देकर उनकी ज़मीनें छीन लेते हैं। वे सोचती हैं कि विकास के नाम पर विनाश होता जा रहा है। ऐसा चलेगा तो पेड़- पौधे, वनौषधि सबका नाश होगा। देखिए:

"झारखंड की धरती,
औषधि की धरती,
फूल कंद मूल,
औषधि से भरपूर।"[9]

शासक वर्ग बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ इस आदिवासी समुदाय को पूर्ण रूप से नष्ट करने के लिए तुले हुए हैं। कवि विनोद कुमार शुक्ल जी इसकी भयानकता की ओर संकेत करते हैं:

"जो प्रकृति के सबसे निकट हैं
जंगल उनका है।
आदिवासी जंगल में सबसे निकट है
इसलिए जंगल उन्हीं का है
अब उनके बेदखल होने का समय है।
यही वही समय है
जप्रा आकाश से पहले
एक तारा बेदखल होगा।
एक पेड़ ने
पक्षी बेदखल होगा
आकाश से चांदनी
बेदखल होगी।"[10]

एक ही कार्यालय में काम करनेवालों में उपजातिवाले अपने सहकर्मी आदिवासी को सामानता की दृष्टि से देखने के लिए तैयार नहीं। चाहे वह उच्च श्रेणी का कर्मचारी हो या निम्न श्रेणी का, उसे अनेक प्रकार का अपमान सहना पड़ता है। इसका जिक्र महादेव टोप्पो ने इस प्रकार किया है:

"दफ्तर में अपने सहकर्मियों के बीच
हम चपरासी क्लर्क या अधिकारी नहीं है।
हम हैं मंदबुद्धि पियक्कड़
या फिर रिजर्व कोटे के आदमी। "[11]

क्रिश्चन पादरी आदिवासियों को अपने वश में लाकर उनका धर्म-परिवर्तन करते हैं, इसका प्रभाव आदिवासियों पर जरूर पड़ता है। भुजंग मेश्राम की कविता 'गोड फादर' इस की ओर इशारा करती है।
"वह आए तब
उनके हाथ में था बायबल,
और हमारे हाथों में जमीन।
वे बोले ईश्वर के पास भेद नहीं है,
कोई काला या गोरा, करो प्रार्थना।
बंद करो आँखें, हमने बंद की आँखें,
जब आशा से आँखें खोलीं तो देख
उनके हाथ में जमीं थी।
और हमारे हाथ में बायबल।"[12]

आदिवासी जीवन का चित्रण करनेवाले कवियों ने आदिवासी नायकों को महत्व देकर नवीन इतिहास की सृष्टि के लिए प्रस्थान बिंदु तलाशे हैं। बिरसा आदिवासियों का नायक है। उसने जंगल और जमीन पर लोगों के अधिकार एवं स्वशासन और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। आदिवासियों की समस्याएँ जटिल होती जा रही हैं। देश के अनेक भागों में परिवर्तन की शंख ध्वनि गूंज रही है। युवा कवि अनुज लुगुन वर्तमान स्थिति में अघोषित उलगुलान (आंदोलन) की आवश्यकता पर बल देते हैं। उनकी पंक्तियाँ देखिए:
"लड़ रहे हैं आदिवासी
अघोषित उलगुलान में।
कट रहे हैं वृक्ष,
माफियाओं की कुल्हाड़ी से और
बढ़ रहे हैं कंक्रीटों के जंगल,
दान्ड्र जाए तो कहाँ जाए?
कटते जंगल में
या बढते जंगल में ।" [13]

कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह ने 'बोलो मोहन गाजूक' विता संग्रह में बिरसा के उत्तराधिकारियों की दयनीय होती स्थिति एवं समझौता परस्त होती आदत को कवि ने व्यक्त किया है:
"यह तीसरी पुरत है खदान की जिससे भात ने
जंगल के सब सपने छीन लिए हैं और संखुआ,
या साल की गंध कैसी होती है उसे नहीं मालूम
मालूम यह भी नहीं है कि जिस नदी के जल में स्नान
करता है उसका क्या नाम है और वह पहाड़ से
कैसे निकलती है
बानी ने उसे साहब भैया मुंशी की बात पर सिर झुका
कर
चलना सिखाया,
सीसे की तरह तनकर ख़डा होता नहीं "[14].

संजीव बक्शी की 'मुख्य धारा' कविता में भी बस्तर के आदिवासियों के जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। शासक वर्ग आदिवासियों को मुख्य धारा में लाने का वादा देते हैं। पर वे सब खोखले हैं यथा:
"शुरू शुरू तो जानते, मंच पर जो होते भाषण
गाड़ियों में भरभर कर उन्हें ले जाया जाता यहाँ वहाँ।
यही है मुख्यधारा पर, यहाँ भी दोहराया गया हमें तुम्हें
अच्छा हुआ तुमने पूछा नहीं काँ है मुख्यधारा।"[15]

अशिक्षित होने के कारण आदिवासी लोगों का फायदा उठाते हैं शासक वर्ग। आदिवासियों को शिक्षा का अवसर मिलना चाहिए। शिक्षा द्वारा ही उनमें जाग्रति होती है। इसका उल्लेख महादेव टोप्पो इस प्रकार करते हैं:
इससे पूछ ले कि
"वे पुनः तुम्हारा अपने ग्रंथों में
बंदर भालू या किसी अन्य जानवर,
के रूप में वर्णन करें
तुम्हें अपने आदमी होने की

तलाशनी होगी परिभाषा।"[16]

अपने अधिकार को साबित करने के लिए आदिवासी लड़ने को तैयार हैं। अब वे हटना नहीं चाहते। अनुज लुगुन अपनी कविता 'हमारी अर्थी शाही हो नहीं सकती' में लड़कर मरने का आह्वान देते हैं:

"ओ मेरी युद्धरत दोस्त,
तुम कभी हारना मत।
हम लड़ते हुए मर जाएँगे
उन जंगली पगडंडियों में।
उन चौराहों में
उन घाटों में
जहाँ जीवन सबसे अधिक संभव है।"[17]

अब आदिवासी समाज में बड़े-बड़े परिवर्तन आ रहे हैं। आज आदिवासी को शिक्षा का अवसर मिल रहा है। इसलिए शिक्षित आदिवासी शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे हैं। वे अपनी सामाजिक संस्थाओं और अपने सांस्कृतिक वैभव को छोड़ रहे हैं। आदिवासी समाज के विद्रोह का स्वर बस्तर के कवि लक्ष्मीनारायण पायोधि की इन पंक्तियों में है:

"सोचता सोमारू
तोड़ते होंगे दाँत आदमखोरों के
न धीन सके कोई भी
झोंपड़ी का उजाला।"[18]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि समकालीन आदिवासी कविताओं में आदिवासी जीवन की समस्याएँ, संघर्ष, संस्कृति, नृत्य, संवेदना उनके जीवन से संबंध रखनेवाली भावना की अभिव्यक्ति मिलती है। अब तो आदिवासी विमर्श के रूप में यह भावना प्रज्ज्वलित हो उठती है। ये कविताएँ आदिवासियों के जीवन में बदलाव लाने में सक्षम होंगी। इस प्रकार समकालीन आदिवासी कविता में आदिवासी शोषण के विभिन्न पहलुओं का अनावरण हुआ है। आदिवासियों को अपनी अस्मिता को सजग करने और अपनी चेतना को जाग्रत कर अपने ऊपर होनेवाले अमानवीय शोषणों के खिलाफ लड़ने का अवसर समकालीन आदिवासी कविता में बुलंद है।

संदर्भ संकेत :

1.हरिराम मीणा रोया नहीं था यक्ष 2003,पृ.40-41
2.राम दयाल मुण्डा, पुनर्मिलन और अन्य गीत, पृ10
3.ज्ञानेंद्रपतिसंशयात्मा, पृ.20
4.विनोद व्यास 'खिलाफ हवा से गुज़रते हुए', पृ.2425
5.डॉ. वेरियर एलबिन पूर्वग्रह जुलाई-सितंबर 2010,पृ.13
6.निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द पृ 2021
7. निर्मला पुतुल, नगाडे की तरह बजते शब्द पृ 93
8. हरिराम मीणा, सुबह के इंतज़ार में पृ 18
9. सरितासिंह बडाईक की कविताएँ पृ 38
10.विनोदकुमार शुक्ल, वागर्थ,अंक 185, दिसं 2019 आमुख
11.महादेव टोप्पो, संरमणिका गुप्ता आदिवासी स्वर और नई शताब्दी पृ 49
12.भुजंग मेश्राम उलगुलल, पृ.32
13.अनुज लुगुन वसुधा 85, अप्रैल-जून 2010, पृ.184
14.कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, बोलो मोहन गाजू, पृ.24
15.संजीव बक्शी, मोहांझाड को लाइफ ट्री कहते हैं,पृ.66
16.सं हरिराम मीणा, समकालीन आदिवासी कविता, पृ.18
17.सं. हरिराम मीणा, समकालीन आदिवासी कविता, पृ.15
18. लक्ष्मी नारायण पयोधि, सोमारू, पृ.47

♦ सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय,
तिरुवनन्तपुरम, केरल
91-9495369970

हिंदी का समकालीन ब्लॉग लेखन

♦ डॉ.बिनु पुलरी

सारांश- वैचारिक पराधीनता को दूर करनेवाले साधनों में सोशल मीडिया एक मील का पत्थर माना जाता है। यह एक ऐसा प्लेटफॉर्म है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों को निर्बाध गति से अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है जहाँ हम अपने विचारों को अपनी सुविधा और सहजता के अनुसार अभिव्यक्त कर सकते हैं। यद्यपि वैचारिक स्वतंत्रता मुख्यधारा की मीडिया में भी संभव है लेकिन मुख्यधारा की मीडिया में यह स्वतंत्रता ज़्यादातर समाज के प्रभावशाली वर्गों को ही प्राप्त है। अर्थात् सभी वर्गों के लिए संभव नहीं है। संचार क्रांति के इस दौर में प्रत्येक व्यक्ति इंटरनेट या किसी न किसी संचार माध्यमों से जुड़ा हुआ है और उनका प्रयोग करता है। अतः सोशल मीडिया के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को वैचारिक स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वर्तमान में सोशल मीडिया का बहुआयामी विकास हुआ है।

अंतरजाल (इंटरनेट) :- इंटरनेट कंप्यूटर नेटवर्क की वैश्विक प्रणाली है। सूचना प्रौद्योगिकी की क्रान्ति ने जिस प्रकार से पूरी दुनिया को एक इलेक्ट्रानिक गज़ेट में समेट दिया है, उससे मध्य वर्ग और विशेषकर आधी दुनिया की सोच में जबरदस्त बदलाव आया है। पहले की तुलना में अब वह दुनिया की गतिविधियों में रुचि लेने लगी है और अपनी अभिव्यक्ति को मुखरता प्रदान करने के लिए सजग हो उठी है।

शोध पद्धति :-प्रस्तुत शोध पत्र लेखन के लिए विश्लेषणात्मक एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान पद्धति का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

हिन्दी ब्लॉग की दुनिया ने किसी भी माध्यम की तुलना में बेहतर ढंग से नोटिस लेने की पूरी कोशिश की है। ब्लॉग की खुलती अनंत ख़िडकियाँ ये साबित करती हैं कि अब पेशेवर लोग ही नहीं आम लोग भी अपने समय की हलचलों और मुद्दों पर अपने मन की बातों को कहने के लिए बेचैन हैं और इस ब्लॉग की दुनिया में उनकी अभिव्यक्ति की जाती है। यह ब्लॉग की ही ताकत है, इसका परिचय देना ही प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है।

विश्लेषण

हिंदी ब्लॉगिंग ने जीवन के हर क्षेत्र पर अपनी सार्थक उपस्थिति जमा कर दी है। चाहे वह विमर्श का क्षेत्र हो या सूचना का क्षेत्र हो । ब्लॉगगिंग में गंभीर विषयों पर अपनी बात को पूरी ईमानदारी के साथ सरल व सहज भाषा में रखा जा सकता है, जिससे हम आम पाठक से लेकर खास पाठक तक अपनी बात को सरलता और सहजता के साथ पहुँचा सकते हैं। इतना ही नहीं, जो मुद्दे किसी कारणवश मुख्यधारा की मीडिया (प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया) से छूट जाते हैं उन मुद्दों को भी ब्लॉग में बड़ी ही सहजता के साथ उठाया जाता है और उन पर विचार-विमर्श किया जाता है। ब्लॉग की सबसे बड़ी ताकत यह है कि ब्लॉग में पाठकों की प्रतिक्रिया त्वरित गति से मिलती रहती है। ब्लॉग का अपना एक मंच है जहाँ आप आसानी से अपनी बात खुलकर कह सकते हैं। इतना ही नहीं इस माध्यम के द्वारा आप देश-विदेश के लोगों से जुड़ भी सकते हैं तथा नये-नये लोगों से अपना परिचय बना सकते हैं। हिंदी ब्लॉगिंग में तत्कालीन साहित्यिक विषयों के साथ-साथ लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य तेज़ी से हो रहा है। इसमें कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण,रेखाचित्र, यात्रा वृतांत आदि प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं।

व्यक्तिगत ब्लॉग :-

किसी एक व्यक्ति द्वारा बनाए गए ब्लॉग को व्यक्तिगत ब्लॉग की संज्ञा दी जाती है। इसमें ब्लॉगर ही लेखक, प्रकाशक और संपादक होता है। यहाँ ब्लॉगर द्वारा पोस्ट किए गए लेख को पाठक पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया देता है।

नौ दो ग्यारह :-

यह आलोक कुमार का ब्लॉग है। इसे हिंदी का पहला ब्लॉग माना जाता है। यह ब्लॉग 21 अप्रैल 2003 को प्रकाश में आया। 21 अप्रैल, 2003, सोमवार को अपने पहले ब्लॉग पोस्ट में वे लिखते हैं - "चलिये अब ब्लॉगबना लिया है तो कुछ लिखा भी जाए इसमें। वैसे ब्लॉग की हिन्दी क्या होगी? पता नहीं। पर जब तक पता नहीं है तब तक ब्लॉग ही रखते हैं, पैदा होने के कुछ समय बाद ही नामकरण होता है न।"[1]

वर्तमान समय हिंदी ब्लॉगिंग के लिए यह स्वर्णिम युग है।

समाजवादी जन परिषद :-

यह समकालीन हिंदी ब्लॉग लेखन में एक महत्वपूर्ण ब्लॉग है। यह ब्लॉग गंभीर मुद्दों पर बहस करता हुआ दिखाई देता है। इसके ब्लॉगर हैं बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के अध्यापक अफलातून। इस ब्लॉग में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विषयों पर कई सारगर्भित आलेख लिखे गए हैं। इस ब्लॉग में आदिवासी और दलित समाज के कई महत्वपूर्ण सवालों को उठाया गया है जिनमें आदिवासियों का शोषण औरउनके जंगल-जमीन से बदखल किए जाने जैसे गंभीर मुद्दे शामिल हैं। अफलातून की राय में आदिवासी के हितों में कानूनी बदलाव की जरूरत है जिससे लोगों को भेदभाव एवं छुआछूत से मुक्त कराया जा सके। वे साम्प्रदायिक हालातों पर विचार करते हुए लिखते हैं कि समाज में प्रशासनिक और कानूनी सुधार किया जाना चाहिए। हमारी शिक्षा व्यवस्था में बदलाव किया जाना चाहिए। हमें शिक्षा के सदुपयोग से धर्म, जाति, संप्रदाय, भाषा, क्षेत्र की बेड़ियों को तोड़कर जीवन के उदार पक्ष की तरफ बढ़ना चाहिए, जिससे दूसरों के प्रति विश्वास और भाईचारे का भाव बना रहे। इसके अलावाइस ब्लॉग में स्त्री शिक्षा, राष्ट्रवाद, पर्यावरण अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय गतिविधि का विश्लेषण किया गया है।

ताऊ डॉट इन :-

यह ब्लॉग पी सी रामपुरिया का है। इसमें हास्य व्यंग्य की अनोखी धारा प्रवाहित करनेवाली बातें लिखी गयी हैं। इस ब्लॉग की अपनी एक अलग पहचान है। इसमें हरियाणवी शैली में कई पोस्ट प्रस्तुत की गई है, जिसके कारण इसकी लोकप्रियता में खूब वृद्धि हुई है।

लोकरंग ब्लॉग :-

ब्लॉग की दुनिया में लोकरंग एक महत्वपूर्ण ब्लॉग है जिसके माध्यम से भारतीय संस्कृति की आत्मा की पहचान को संजोने का प्रयास किया गया है। इसका एक फायदा यह भी है कि वैश्विक स्तर पर हमारी सांस्कृतिक पहचान को बल मिला है। वर्ष 2008 में इस ब्लॉग के माध्यम से लोक संस्कृति को नियमित रूप से संकलित करने का कार्य किया जा रहा है।

शब्दों का सफर

अजीत वाडेकर का ब्लॉग 'शब्दों का सफर' शब्दों की व्युत्पत्ति से लेकर उसके तमाम सोपानों पर दृष्टिपात करता है। ब्लॉगर ने लिखा है - "शब्दों की व्युत्पत्ति को लेकर भाषा वैज्ञानिक का नज़रिया अलग अलग होता है। मैं भाषा विज्ञानी नहीं हूँ लेकिन जब उत्पत्ति की तलाश में निकलें तो शब्दों का एक दिलचस्प सफर नज़र आता है।"[2]

खेत खलिहान ब्लॉग :-

यह शिवनारायण गौर का ब्लॉग है। भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण इसकी दो तिहाई आबादी गाँव में निवास करती है। अतः लोक संस्कृति और ग्रामीण चेतना को समझे बगैर भारतीय संस्कृति को समझना संभव नहीं है। इस संदर्भ में खेत खलिहान ब्लॉग में ब्लॉगर ने ग्रामीण संस्कृति को मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया है। इस ब्लॉग में खेती के प्रत्येक पहलू पर

बारीकी से नज़र रखी गई है एवं ग्रामीण चेतना और ग्रामीण समस्याओं को बखूबी उठाया गया है।

दालान ब्लॉग

नोएडा निवासी रंजन ऋतुराज सिंह का ब्लॉग 'दालान' चिट्ठी पत्री का संग्रह जान पड़ता है। इस ब्लॉग में ग्रामीण विषयों पर बात तो की गई है, साथ ही साथ भारतीय संस्कृति को जीवंत रखनेवाले विशेष पर्व जैसे-होली, छः पूजा को भी खास तरजीह दी गई है। यह चित्रण एकदम सजीव जान पड़ता है। इसे पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे यह घटनाक्रम हमारी आँखों के सामने घटित हो रहा है। यह ब्लॉग गाँव की यादें ताज़ा करने, उन्हें जीवित रखने का बखूबी कार्य करता है।

साई ब्लॉग :-

यह ब्लॉग डॉक्टर अरविंद मिश्र के निजी लेखों का संग्रह है। इस ब्लॉग में विश्व के प्राचीनतम शहर वाराणसी की झलक का प्रमाण मिलता है। 'साईं ब्लॉग' में डॉक्टर अरविंद मिश्र ने ग्रामीण परिवेश और नगरीय जीवन का मिला-जुला रूप प्रस्तुत किया है। इस ब्लॉग में ब्लॉगर अपनी पूरी शक्ति के साथ आस्था और विज्ञान के सवालों को ख़डा करता है।

मनोज वाजपेयी :-

ब्लॉग की दुनिया में मनोज बाजपेयी का बड़ा नाम है। ये प्रयोगधर्मी अभिनेता हैं। उनकी पहचान देश-विदेश में एक मंजे हुए अभिनेता के रूप में है। इनके ब्लॉग लेखन में जीवन का कड़वा सच व्यक्त हुआ है। इसके अलावा भी कुछ महत्वपूर्ण ब्लॉगर हैं -जितेंद्र चौधरी, मनोज शुक्ला, आलोक कुमार, देवाशीष, रवि रतलामी, पंकज बेगानी, समीर लाल, रमण कौल, मैथिलीजी, जगदीश भाटिया, पंकज नरूला, अविनाश, अनुनाद सिंह, शशि सिंह, सृजन शिल्पी, ईस्वामी, सुनील दीपक आदि के नाम लिए जा सकते हैं। जयप्रकाश मानस, नीरज दीवान, श्रीश प्रेंजवाल शर्मा, अनूप भार्गव, शास्त्री जेसी फिलिप, हरिराम, आलोक पुराणिक, ज्ञानदत्त पांडेय, अभय तिवारी, नीलिमा, अनामदास, काकेश, अतुल अरोडा, घुघूतीप्रासूती, संजय तिवारी, सुरेश चिपलूनकर, तरुण जोशी आदि भी हैं।

सामूहिक ब्लॉग

'सामूहिक ब्लॉग' का निर्माण सार्वजनिक व सामूहिक महत्व के विषयों पर ब्लॉगर्स को अपनी राय रचनाओं के माध्यम से एक मंच पर प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया जाता है। अर्थात् इसमें ब्लॉग स्वामी स्वयं भी ब्लॉग व्यवस्थापक की भूमिका निभाता है और अन्य किसी ब्लॉगर को व्यवस्थापक के रूप में नियुक्त भी कर सकता है।

आज हिंदी ब्लॉग जगत में सामूहिक ब्लॉग की भरमार है। इसमें कुछ साहित्यिक उद्देश्य से सृजित किये गए हैं तो कुछ अन्य ब्लॉग भी हैं जैसे -चर्चामंच, मोहल्ला, कबाड़खाना, भडास आदि। इसी प्रकार नारी को केंद्र में रखकर भी अनेकों सामूहिक ब्लॉग का निर्माण किया गया है जिनमें भारतीय नारी, चोखेर बाली ब्लॉग आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।

कबाड़खाना

अशोक पांडेय का यह ब्लॉग एक सामूहिक ब्लॉग है। यह ब्लॉग भारत के आम उपभोक्ता को आईना दिखाने का काम करता है। इसके बारे में कहा जाता है कि इस कबाड़खाने में सबके लिए कुछ न कुछ मिल ही जाता है। सभी अपने काम की कोई न कोई सामग्री ढूँढ ही लेते हैं।

नारी ब्लॉग

यह सामुदायिक ब्लॉग है जिसकी सदस्याएँ नारियाँ ही हैं। इसके माध्यम से स्त्रियाँ अपनी बात समाज तक पहुँचा रही हैं। नारी ब्लॉग पर केवल महिलाएँ ही लिख सकती हैं । 21वीं शताब्दी में इस ब्लॉग के माध्यम से नारी को अपनी एक अलग पहचान दिलाने का प्रयास किया जा रहा है।जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, महिला सशक्तिकरण के मुद्दे पर में काफी कुछ लिखा जा रहा है।

चोखेरबाली :-

यह एक कम्युनिटी ब्लॉग है। यह ब्लॉग भी नारी ब्लॉग की तरह है। इसमें अंतर सिर्फ इतना है कि यहाँ नारी संबंधी विचार कोई भी लिख सकता है। इस ब्लॉग के माध्यम से समाज में नारियों को कमतर आँकने की मानसिकता को बदलने का उपक्रम किया गया है।

भड़ास:-

यह एक सामूहिक ब्लॉग है। इसमें बड़े ही सहज व सरल ढंग से आप अपनी बात कह सकते है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें गंभीर से गंभीर विषयों को भी बड़े ही सहज और सरल ढंग से व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। इसके पोस्टों में कहीं गंभीरता दिखती है, कहीं हम देखते हैं कि ज़िंदगी के हर पहलुओं को समेटने का प्रयास करता है। अतः आप अपना मनोबल बढ़ाये और इस मंच के माध्यम से अपने एहसास को जन-जन तक पहुचाइयें।

हिंदी ब्लॉग:-

हिंदी ब्लॉग पर ब्लॉगिंग के विभिन्न आयाम और साधनों की जानकारी उपलब्ध है। ब्लॉगिंग के अलावा आपको यहाँ वेब होस्टिंग, ब्लॉग से इनकम, तकनीक, शिक्षा व रोज़गार, खेल, यात्रा, भाषा व विविध वषयों पर लेख भी पढ़ने को मिलते हैं।

हिंदी मी :-

Hindime.net एक तकनीकीब्लॉग है,जिसका मूल उद्देश्य है कि भारत को एक डिजिटल (Digital)देश बनाने में यथासंभव कोशिश करना और हमारे लोगों के जीवन को तकनीकी की मदद से आसान करना। यह ब्लॉग मुख्य रूप से नये-नये technological updates की जानकारी देता है। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है कि लोगों को बहुत ही आसान भाषा में कठिन terms को समझा सकते हैं।

अच्छी खबर :-

Achhikhabar.com के संस्थापक हैं गोपाल मिश्र।वे लोगों को अच्छे कहानी और उक्तियाँ सुनाना पसंद करते हैं।

हिंदी सोच:-

'हिंदी सोच' के संस्थापक हैं पवन कुमार। उनका उद्देश्य यह देखना है कि कैसे लोगों के बीच हिंदी के प्रति जागरूकता पैदा कर सके।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में कहें तो ब्लॉग के माध्यम से अनेक प्रतिभाशाली लेखकों को अपनी प्रतिभा दिखाने का मौका मिल रहा है। जहाँ पहले अनेक लेखकों को अपनी प्रतिभा दिखाने का मौका नहीं मिलता था आज उन्हें यह मौका ब्लॉग के माध्यम से मिल रहा है। हिंदी के बड़े साहित्यकार राजेंद्र यादव ने एक बार ब्लॉग के संदर्भ में कहा था 'ब्लॉग उन लोगों के मन की भड़ास निकालने का साधन है जिनको प्रिंट मीडिया में छपने का मौका नहीं मिला।' आज प्रकाशक ब्लॉग के माध्यम से उत्तम रचना और रचनाकार को जानकर उस ब्लॉगर से स्वयं सम्पर्क करते हैं, और उनकी रचना के बारे में विचार-विमर्श करते हैं तथा रचना को छापने का कार्य भी करते हैं। ब्लॉग के माध्यम से हिंदी भाषा की भी तरक्की दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इतना ही नहीं, हिंदी की लोकप्रिय किताबों को कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी किया जा रहा है। यह कार्य ब्लॉग के माध्यम से सहज, सरल और तीव्र गति से हो रहा है। वहीं दूसरी तरफ इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का झुकाव भी हिंदी की तरफ बढ़ रहा है। जहाँ पहले हिंदी माध्यम के युवा, नौकरियों के लिए तरसते थे। आज हिंदी कॉल सेंटरों में, प्रकाशन घरों में अनुवादकों की तथा विदेशों में हिंदी के शिक्षकों की मांग दिन पर दिन बढ़ रही है। बड़ी-बड़ी मल्टीनेशनल कंपनियाँ हिंदी जाननेवालों को नौकरी दे रही हैं और अपने हैंडसेट व वीडियो गेम्स जैसे अनेक उपकरणों को हिंदी में भी लांच कर रही हैं। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि ब्लॉग रूपी पंख के सहारे हिंदी साहित्य संपूर्ण विश्व में एक नई उड़ान भर रहा है।

(शेष पृ.सं. 36)

मालती जोशी की कहानियों में चित्रित महानगरीय जीवन बोध

♦ डॉ. स्मिता चाक्को

सारः- स्वातन्त्र्योत्तर काल में ग्रामीण परिवेश से ज़्यादा नगरों का चित्रण कहानियों में होने लगा। आबादी की दृष्टि से बड़े, औद्योगिक तथा आधुनिक दृष्टि से विकसित महानगरों ने इस युग के कथाकारों को आन्दोलित किया है। इनमें ज़्यादातर कहानियों में दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता इन तीनों महानगरों में जीवन-संघर्ष करनेवाले व्यक्तियों की समस्याओं को इन कहानीकारों ने उजागर किया है। महानगर का यथार्थ चित्रण करनेवाले साहित्यकारों में कमलेश्वर, मोहन राकोश, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, तथा बाद के कथाकारों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। महिला कथा लेखिकाओं में महानगरीय समस्या तथा महानगरीय जीवन का चित्रण करनेवाली लेखिकाएँ इस प्रकार हैं - निरुपमा सेवती, राजी सेठ, मणिका मोहिनी, ममता कालिया, दीप्ति खण्डेलवाल, मृदुला गर्ग, मंजुला भगत तथा बाद की पीढ़ी की कथा लेखिकाएँ। मालती जोशी भी महानगरीय समस्याओं का चित्रण करने वाली एक महत्वपूर्ण कथा लेखिका हैं।

महानगर स्वरूप

महानगर को अंग्रेज़ी में (मेट्रोपोलिटन) कहा जाता है। यह 'मेट्रोपोलिटन' ग्रीक शब्द मेट्रोपोलीस से बना है। महानगर का अर्थ होता है छोटे-छोटे नगरों को अपनी चपेट में लेकर अपने आसपास के नगरों सें जुड़कर बना हुआ विशाल नगर। औद्योगीकरण के कारण नगरों का विकास तथा विस्तार हुआ। महानगर में विभिन्न प्रांतों से का आए लोगों के कारण यहाँ अलग-अलग भाषा और संस्कृतियों का मिलाप दिखाई देता है। देश की बढ़ती हुई आबादी का अंदाज़ महानगरों में जाते ही आता है। देहाती व्यक्ति को यहाँ अपना देहातीपन भुलाना पड़ता है। महानगर की चकाचौंध के कारण वह अपने आप में परिवर्तन कर लेता है। महानगर की त्रासदी व्यक्ति को आसामान्य बनाती है। निरंतर संघर्ष करते रहना ही महानगरीय व्यक्ति के जीवन की विवशता है। अनेक प्रकार के उच्च शिक्षा संस्थानों के कारण विदेश तथा देश के विविध राज्यों से आनेवाले छात्रों को अध्ययन सुविधाएँ महानगर में ही प्राप्त होती हैं। इसलिए यहाँ छात्र आन्दोलन, नारेबाजी, जुलूस, हड़ताल जैसी बातें आम होती हैं। महानगर में हर व्यक्ति का जीवन जीने का तरीका अलग-अलग परिस्थितियों पर निर्भर होता है।

महानगरीय जीवन यांत्रिक बनता जा रहा है। महानगरीय जीवन की आपाधापी में व्यक्ति-व्यक्ति का संबंध यांत्रिक बनता जा रहा है। "समाज के संबन्ध टूटते गये हैं और जो नये संबन्ध उगे हैं वे बहुत यांत्रिक हैं, उनमें से अकेलेपन और निस्संगता की भावना विकसित गेती गयी है।, भीड़ बढ़ती गयी है और भीड़ को आपस में जोडनेवाली कड़ी टूटती गई हैं-अर्थ एकभाव मूल्य और संबन्ध बनता गया है। इस प्रकार महानगर में आनेवाला हर व्यक्ति आहिस्ता आहिस्ता यहाँ की भीड़ का एक हिस्सा बन जाता है"।[1]

ऊब और एकरसता

"महानगरीय जीवन की ऊब और एकरसता भरी ज़िन्दगी को आधुनिक कहानी में बहुत सफलता से अभिव्यक्ति मिली है"।[2] महानागरीय जीवन में व्यक्ति का जीवन एक ही रूटीन पर चलता है। इसी वजह से जीवन में एकरसता आ जाना स्वाभाविक होता है। परन्तु इससे हटकर ज़िन्दगी को ताज़ा-ताज़ा बनानेवाली कुछ घटनाएँ याद आये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

मालती जोशी की 'मध्यान्तर' कहानी में विमल का जीवन एकरस और अभावों के कारण ऊब जाता है। 'परम्परा' कहानी में अम्मा और बाबूजी अपने बेटे-बहू के पास अमेरिका जाते हैं। विदेशी वातावरण और यहाँ के महानगरीय जीवन में वे जुड़ नहीं पाते हैं। वहाँ की ऊब, एकरसता तथा अकेलापन में अम्मा और बाबूजी को रास नहीं आता था। 'बेघर' कहानी में बाबूजी का मुंबई में दम घुटने लगता है। वे दिनभर बालकनी में बैठे सड़क को देखते रहते हैं। किसी से बात करने के लिए तरस जाते हैं। इस प्रकार उन्हें न चाहते हुए भी ऊब और एकरसता का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार मालती जोशी की कुछ कहानियों में भारत और अमेरिका के तथा ब्रिटेन के लंदन जैसे शहरों के महानागरीय जीवन का भी चित्रण प्रस्तुत हुआ है। यहाँ के एकरस जीवन में पुरानी पीढ़ी के लोगों को रस नहीं आता, वहाँ उनका मोहभंग हो जाता है।

संबंधों का थोथापन

मालती जोशी की कहानियों में महानगरीय जीवन में संबंधों का जो थोथापन होता है उसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत हुआ है। लेखिका ने बोथरी पड़ती जा रही मानवीय संवेदना की सभी पर्ते खेलकर रख दी हैं। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध गज़ल समीक्षक 'डॉ. मधु खराटे' जी लिखते हैं "आज समाज में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ निमणि हो गयी हैं कि मनुष्य हीन हो गया है। शहरों में तो वह अधिक आत्मकेन्द्री हो गया है"।[3] रिश्ता भले ही खून का हो, परन्तु अपनापन औपचारिक हो तो रिश्ता अपना महत्व खो देता है। महानगरीय व्यक्ति की वृत्ति इतनी संकोची हो गई है कि हर वक्त अपने ही बारे में सोचा जाता है। घर आया मेहमान, बोझ लगने लगता है। 'अवसान एक स्वप्न का' कहानी में भी संबन्धों का थोथापन यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है। कहानी में भारती की माँ मृत्यु-पूर्व अपना मकान दोनों बेटियों के नाम कर देती हैं। इसलिए दोनों बेटे नाराज़ हो जाते हैं। छोटी बहू सास के बारे में कहती है - "वह जीते जी हमें क्या दे गई, जो में मरने के बाद आशा लगाती"।[4] इस प्रकार स्वार्थ के कारण छोटी बहू अपना दिखावे का रोना भी भूल जाती है।

यातायात की समस्या

महानगर में यातायात की समस्या एक गंभीर तथा बडी समस्या। बसों, ट्रामों, रेलों, टैक्सियों तथा प्राइवेट वाहनों द्वारा हर व्यक्ति को सदैव कहीं न कहीं पहूँचने की कहीं से लौटने की जल्दी रहती है। मालती जोशी की 'मध्यान्तर' कहानी में विमल पंडित एक कामकाजी नारी है। मध्यवर्गीय नारी होने के कारण वह गृहस्वनी चलाकर जैसे-तैसे अपने पास पैसे बचा पाती है। इसलिए उसे बस से ही जाना पड़ता है। वह चाहकर भी अपने लिए कभी स्कूटर नहीं कर पाती। वह कहती है - "सब से ज़्यादा मुसीबत तो अपनी है। घर इतनी दूर और पर्स हमेशा खाली। सिवाय बस का इंतज़ार करने के कोई चारा ही नहीं।"[5] 'पूजा के फूल' कहानी में सुरेश की पत्नी बीमार रहती है। उसे चेकअप करवाने केलिए लेकर जाना पड़ता है। परन्तु उसके साथ रिक्शे का किराए का खर्च और जुड़ गया है। ऐसे समय में व्यक्ति को खुद के वाहन होने की अपेक्षा रखना स्वाभाविक है। 'अक क्रांति सीमित सी' कहानी में शीतल को भी इसी तंग हालत से गुज़रकर यातायात की समस्या का सामना करना पड़ता है।

आर्थिक तंगी

भौतिक सुख की इच्छाएँ लेकर जीने के कारण तथा बढ़ती महंगाई के कारण आज हर व्यक्ति को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है। बढ़ते बाज़ार भाव, बच्चों का ट्यूशन, मन में किसी चीज़ के लिए रही अधूरी लालसा आदि के कारण व्यक्ति को पदोन्नति मिले अथवा इंक्रिमेंट से बढ़ती आय का कोई फायदा नहीं होता है। आर्थिक तंगी के कारण पति के साथ पत्नी को भी नौकरी करनी पड़ती है। परन्तु दोनों की तनख्वाह अगर कम हो तो घर-गृहस्थी चलाते-चलाते आर्थिक तंगी आ जाती है। 'मध्यान्तर' कहानी की विमल आर्थिक तंगी के कारण परेशान है। विमल की ननद को तीन लड़कियों के बाद लड़का होता है। तब विमल के पति

सब के यहाँ मिठाई बाँटते हैं। किन्तु विमल को यह फिजूल खर्ची लगती है। "आटा गूँधते हुए मेरा मन कसैठा हो गया था। यहाँ तो पाई-पाई बचाने की जुगत करते रहते हैं। औठ ये हैं कि बेकार खर्च करते हुए भी खयाल नहीं करते।"[6] पूजा के फूल' कहानी में सुरेश क्लास टू अफ्सर है। पत्नी की बीमारी के कारण सुरेश को आर्थिक तंगी भुगतनी पड़ती है। गृहस्थी के साथ-साथ बीमारी अस्पताल में जाने के लिए रिक्शे का किराया इन सब बातों की चिन्ता करने के कारण सुरेश की पत्नी पर दवाईयों का असर नहीं होता है। "बस, यह साईकिल ही सारा शो मार देती है। एक स्कूटर ज़रूरी हो गया है। पर हर बार कोई न कोई अप्रत्याशित खर्च सामने आ जाता है। पिछले छह महीनों से तो वह खूद ही बीमार चल रही है। पता नहीं कितना रुपया फुंक गया है।"[7] इस प्रकार मालती जोशी की कहानियों में, महानगरीय जीवन की आर्थिक तंगी का चित्रण हुआ है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रीमती मालती जोशी की कहानियों में महानागरीय जीवन की विभिन्न प्रकार की समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत हुआ है। इन समस्याओं के अन्तर्गत लेखिका ने महानगर में जीवन जीने वाले व्यक्ति को केन्द्र में रखा है। महानगर में व्यक्ति सुबह से लेकर रात तक अपने आप को खो देता है। इसलिए उसका जीवन एकरस बन जाता है। ऊब और एकरस जीवन से संबंधित 'मध्यांतर', 'अनुबंध', और 'परंम्परा' आदि तीन कहानियाँ प्राप्त हुई। लेखिका ने अपनी कहानियों में महानागरीय व्यक्ति की पारिवारिक समस्याओं का स्वाभाविक चित्र खींचा है। महानागरीय समस्याओं का चित्रण करते हुए भी लेखिका का ज़्यादातर ध्यान महानागरीय व्यक्ति के पारिवारिक जीवन की ओर ही रहा है। महानगर की गंभीर समस्याओं की ओर लेखिका का ध्यान बहुत ही कम मात्रा में गया है। इस प्रकार लेखिका की कहानियों में महानागरीय जीवन की सीमित किन्तु बहुत ही महत्वपूर्ण चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

संदर्भ

1.हिन्दी कहानीः अंतरंग पहचान, रामदर्श मित्र, वाणी प्रकाशन, पृ 119

2.समकालीन कहानीः युगबोध का संदर्भ, डॉ. पुष्पपाल सिंह, नेशनल पब्लिकेशन हाएस, नई दिल्ली, पृ 204

3.हिन्दी गज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर, डॉ. मधु खराटे, विद्या प्रकाशन, पृ.70

4.औरत एक रात है, मालती जोशी, परमेश्वरी प्रकाशन, पृ 53

5.मध्यान्तर, मालती जोशी, पृ 7

6.मध्यान्तर मालती जोशी, पृ 8

7.एक सार्थक दिन, मालती जोशी, पृ 29

◆ अतिथि प्राध्यापक

हिन्दी विभाग

कातलिकेट कॉलेज, पत्तनंतिट्टा

(पृ.सं.33 के आगे)

संदर्भ

1.हिंदी ब्लॉगिंग चिंतन और विमर्श, डॉ.हिमांशुराय पृष्ठ संख्या.63

2. हिंदी ब्लॉगिंग स्वारूप व्याप्ति और संभावनाएँ,सं.डॉ.मनीषकुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या.67

सहायक ग्रंथ

1 हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास- रवींन्द्र प्रभातहिंदी साहित्य निकेतन,उ.प्र.2011

2. हिंदी ब्लॉगिंग स्वरूप व्याप्ति और संभावनाएँ - सं.डॉ.मनीषकुमार ,मिश्रवाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

3. हिंदी ब्लॉगिंग चिंतन और विमर्श -डॉ. हिमांशु राय, विनय प्रकाशन कानपुर 2021

4. हंस मासिक पत्रिका, सितम्बर 2018

5. www.wikipedia.org

6.manojbhajpayee.itzmyblog.com

◆ सहायक प्राध्यापक

सरकारी आर्टस एण्ट सयन्स कॉलेज,

कोषिक्कोड, केरल।

समकालीन कविता में स्त्री विमर्श

(उदय प्रकाश,चंद्रकांत देवताले, मंगलेश डबराल और पुष्यमित्र उपाध्याय की कविताओं के विशेष संदर्भ में)

♦ **डॉ. धन्या. बी.**

शोध सार- समकालीन कविताओं में स्त्री की सर्वथा नई भूमिकायें दी गयी हैं। वह न बिहारी की नायिका है, न छायावाद की एकांत प्रणयिनी। बल्कि अपनी पूरी साधारणता, कमज़ोरियों और विशिष्टता के साथ विद्यमान है। कानूनी रोक होने पर भी कोख में बच्ची जानकर स्त्रियाँ भ्रूणहत्या केलिए विवश बन पड़ती हैं। स्त्री-पुरुष भेदभाव वर्तमान समाज में अब भी देखा जा सकता है। लडकों को अच्छे भोजन, वस्त्र, शिक्षा आदि सभी मिलते हैं। मगर लड़की इससे वंचित रहती है। हमारे सभ्य समाज में स्त्रियों के प्रित अत्याचार आज अधिक व्यापित हो रहे हैं। समकालीन कवियों ने कविता में स्त्री विमर्श विषय पर ध्यान डाला है। वे स्त्री को पुरुषों के समान स्थान मिलने और अत्याचारों से अपने को बचाने का संदेश कविताओं के माध्यम से दे रहे हैं।

बीज शब्द

समकालीनता, भ्रूणहत्या, कोख, अत्याचार, स्त्री-विमर्श

समकालीनता

समकालीनता अपने आप में एक खास प्रश्न है। अनेक विद्वानों ने इस पर अपने मत दिये हैं। "समकालीनता का अर्थ किसी कालखंड में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं के चित्रण पर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना उनके मूल स्रोत तक पहुंचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है। समकालीनता तात्कालीनता नहीं है।"[1] (समकालीन कहानी की पहचान, डॉ.नरेंद्र मोहन, भूमिका, पृ.2, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली-1978)

स्त्री-विमर्श

स्त्री-विमर्श को अंग्रेज़ी में फेमिनिसम कहा गया है। स्त्री विमर्श उस साहित्यक आंदोलन को कहा जाता है, जिस में स्त्री अस्मिता को केन्द्र में रहकर संगठित रूप से स्त्री साहित्य की रचना की गयी है। हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श अन्य अस्मितामूलक विमर्शों के भांति का मुख्य विमर्श रहा है, जो लिंग-विमर्श पर आधारित है।

मूल आलेख

"बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" आज हम यह अभियान अपने चारों ओर सुनते हैं। क्या आप जानते हैं-इस नारे की आवश्यकता क्यों पड़ी? बडी शरम की बात है कि आज का सभ्य समाज घोषित करनेवाले हमारे भारत के कई स्थानों में आज भी भ्रूणहत्या चल रही है। वह भी स्कान के द्वारा कोख में बच्ची जानकर। भ्रूणहत्या कानूनी रोक है, तो भी अनेक गाँवों में स्त्रियाँ इसके लिए विवश बन पडती हैं। हमारे समाज में आज भी घर में बेटे के जन्म पर खुशियाँ मनायी जाती हैं। लेकिन बेटी है तो सबके मुँह की मुसकान ओझल हो जाती हैं।

आज अनेक समकालीन कवियों ने इस विषय की ओर लोगों का ध्यान खींच लिया है, अपनी कविताओं के माध्यम से विरोध प्रकट किया है और स्त्रियों को आगे बढ़ाने केलिए प्रेरणा भी देते रहते हैं। इनमें अनामिका, गगन गिल, कात्यायनी, निर्मला पुतुल जैसी अनेक कवयित्रियों के अतिरिक्त स्त्री स्वत्व चिंतन की अभिव्यक्ति कई समकालीन कवियों ने भी की है। उनमें

प्रमुख हैं - चंद्रकांत देवताले, मंगलेश डबराल, उदयप्रकाश, पुष्यमित्र उपाध्याय, अरुण कमल आदि।

समकालीन कविता में स्त्री विमर्श

स्त्री को पुरुषों के समान स्थान होना चाहिए साथ ही साथ समाज में उसे सुरक्षित भी रहना है। पर चकित होने की बात यह है कि आज के सभ्य समाज में अपने पति से भी वह असुरक्षित पाती है। स्त्री होने से उन्हें अनेक पीड़ाएँ सहनी पड़ती हैं। इसका संवेदनात्मक चित्रण **उदयप्रकाश** की 'औरतें' शीर्षक कविता में देख सकते हैं। यथा-

"वह औरत
जो सुहागन बने रहने केलिए रखे हुए है
करवाचौंद का निर्जलवृत्त
वह पति या सास के हाथों मार दिए जाने से-
डरी हुई सोती-सोती अचानक चिल्लाती है
एक औरत बालकनी में आधी रात खडी हुई
इंतज़ार करती है अपनी जैसी ही असुरक्षित और बेबस
किसी औरत के घर से लौटने वाले शराब पति का"2
(रात में हारमोणियम-उदयप्रकाश-वाणी प्रकाशन-पृ.31-33 प्रकाशन वर्ष 1998

स्त्री को अर्धांगिनी माना जाता है। अर्थात् स्त्री के बिना पुरुष का जीवन अधूरा है। **चंद्रकांत देवताले** की कविता 'स्त्री के साथ' में कवि स्त्री को जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा मानते हुए कहते हैं-

"इस इलाके में, मैं साँस तक नहीं ले सकता
जिसमें औरत की गंध वर्जित है।"3 (जहाँ थोड़ा सा सूर्योदय होगा-चंद्रकांत देवताले-पृ.110, वाणी प्रकाशन 2008)

आपका मत है कि स्त्री पुरुष की पहचान है। वह सिर्फ हाड़-मांस का पुतला नहीं है।

मंगलेश डबराल का मत है कि नारी दोनों अर्थों में उपभोक्ता समाज में काम का साधन बन जाती है। काम करना एक ओर उसकी ज़िन्दगी की दुर्दशा है दूसरा काम का साधन बनकर पुरुषों का मनोरंजन करना भी है। पूरा इतिहास इसका साक्षी है।

आदमी के पीछे-पीछे चुपचाप तन-तोड़ मेहनत करके अपने सुंदर जीवन को, जीवन के बसंत को बूढ़ापे की ओर ले चलनेवाली विवश नारी पर मंगलेश डबराल ने लिखा है-

"सारा दिन काम करने के बाद
एक स्त्री याद करती है।
अगले दिन के काम,
एक आदमी के पीछे
चुपचाप एक स्त्री चलती है,
उसके पैरों के निशा पर
अपने पैर रखती हुई,
रास्ते पर नहीं उठाती निगाह
किसी चट्टान के पीछे
सन्नाटे में एकाएक स्त्री सिसकती है
अपनी युवावस्था में
अगले ही दिन आनेवाले बूढापे से बेखबर।"4
('कवि ने कहा' (संग्रह)-मंगलेश डबराल, कविता-'एक स्त्री' पृ.-20 किताब घर प्रकाशन, दरियागंज 2010)

वर्तमान समाज में मासूम बच्चियों और स्त्रियों पर बलात्कार करनेवाले कुरूप दिमागवाले इंसानों से खुद सामना करने केलिए आह्वान करके, **श्री पुष्यमित्र उपाध्याय** नारी को अपनी शक्ति की पहचान कराते हैं।आपकी 'सुनो द्रौपदी शस्त्र उठा लो' कविता आज अत्यंत प्रासंगिक बन गयी है।

"सुनो द्रौपदी शस्त्र उठालो,
सुनो द्रौपदी शस्त्र उठालो,
छोड़ो मेहंदी खड्ग संभालो
खुद ही अपना चीर संभालो....."

(सुनो द्रौपदी शस्त्र उठा लो-पुष्यमित्र उपाध्याय-2020)

प्रस्तुत कविता के द्वारा नारी को अपनी अदम्य शक्ति का एहसास दिलाकर अपनी रक्षा केलिए किसी की प्रतीक्षा किये बिना स्वयं अपनी रक्षा करने का आदेश भी कवि देते हैं।

यही बात **स्वामी विवेकानंद** ने भी सालों पहले कही थी "नारी का उत्थान स्वयं नारी ही कर सकती है, कोई और उसे उठा नहीं सकता है। वह स्वयं उठेगी। बस उठने में उसे सहयोग की आवश्यकता है और जब वह उठ खड़ी होगी तो दुनिया की कोई ताकत उसे रोक नहीं सकती, वह उठेगी और समस्त विश्व को अपनी जादुई कुशलता से आश्चर्यचकित कर देगी।"[6] (विवेकानंद की चिन्ताएँ-पी. केशवन नायर-डी. सी. बुक्स, 2004 पृ.183)

स्वामीजी ने 'सहयोग' देने की जो बात की थी वह शायद ऐसी ही होगी कि नारी, समाज रूपी पर्दे से बाहर निकलकर शिक्षित और कामकाजी बनकर स्वयं खड़ी हो जाये। साथ ही साथ पुष्यमित्र जैसे कवियों के द्वारा समाज से उन्हें आगे बढ़ने का सहयोग भी मिले।

उद्देश्य

लैंगिक असमानता की प्रवृत्ति एवं कारणों को समझना तथा इसके फलस्वरूप होनेवाले लैंगिक भेदभाव को मिटाने के लिए समाज को संदेश देना और प्रजनन संबंधी अधिकार, घरेलू हिस्सा,मातृत्व अवकाश,समान वेतन संबन्धी अधिकार,यौन उत्पीड़न,भेद-भाव एवं यौन हिंसा आदि से हर एक स्त्री को समझाना और उससे स्वयं रक्षा करने की क्षमता अपनाना भी स्त्री विमर्श के प्रमुख उद्देश्य हैं। साथ ही साथ इन विषयों पर राजनिति का हस्ताक्षेप भी होना है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि कोई नारे, कानूनी रोक, कवियों द्वारा अपनी कविताओं द्वारा देनेवाले सहयोग के अलावा समाज के दृष्टिकोण में भी बदलाव आना चाहिए। समाज में महिलाओं की बराबर की भागीदारी है। आश्चर्य की बात है कि आज बेटियाँ हर क्षेत्र में माँ-बाप का नाम रोशन कर रही हैं। उसे घर की लक्ष्मी माननी है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"[7] (मनुस्मृति-अध्याय 3 श्लोक 56) (अर्थात् जहाँ स्त्री का आदर-सम्मान होता है, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, उस स्थान, समाज तथा परिवार पर देवता गण प्रसन्न रहते हैं)

संदर्भ ग्रंथ

1. समकालीन कहानी की पहचान, डॉ. नरेंद्र मोहन, भूमिका पृ.2 पराग प्रकाशन, नई दिल्ली-1978)
2. रात में हारमोणियम-उदय प्रकाश-वाणी प्रकाशन पृ.31-33 प्रकाशन वर्ष 1998
3. जहाँ थोड़ा सा सूर्योदय होगा-चंद्रकांत देवताले-पृ.110 वाणी प्रकाशन 2008
4. कवि ने कहा (संग्रह)-मंगलेश डबराल, कविता 'एक स्त्री' पृ. 20 किताब घर प्रकाशन, दरियागंज 2010
5. विवेकानंद की चिंताएँ-पी. केशवन नायर, डी.सी. बुक्स, 2004 पृ. 183
6. मनुस्मृति-अध्याय 3, श्लोक 56

ग्रंथ-सूची

1. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ-रेखा कस्तवार-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2013
2. स्त्री विमर्श विविध पहलू, कल्पना वर्मा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2011
3. शृंखला की कडियाँ-महादवी वर्मा- लोकभारती प्रकाशन 2004

♦सहायक प्रोफेसर & विभागाध्यक्षा
सरकारी कॉलेज, आट्टिंगल।

बदलते मूल्यों में बालक की स्थिति

♦ डॉ.विकास कुमार सिंह

जनसंख्या की दृष्टि से भारत भले ही सिर्फ चीन से ही पीछे दिखाई पड़ता हो, लेकिन साधन और सुविधाओं की दृष्टि में वह छोटे-छोटे देशों से भी कोसों दूर दिखाई पड़ता है। ऐसी स्थिति में आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय अवस्था में दिखाई पड़ती है, जिसका प्रभाव सभी वर्ग के परिवारों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। परिणामस्वरूप परिवार के साथ-साथ बालक के ऊपार भी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने का दबाव पड़ता है। जहाँ बालक अपने नन्हे कोमल कंधों पर आर्थिक बोझ उठाने को विवश होता है, वहीं वह अपने अभिभावकों की व्यस्तता के कारण अकेलापन से भी ग्रसित नज़र आता है । आधुनिक समय में आधुनीकरण, औद्योगीकरण एवं यांत्रिकीकरण की भागमभाग में अभिभावक सिर्फ उलझा ही नहीं हुआ है, बल्कि धन उपार्जन करने के चक्कर में वह अपने दायित्व, नैतिक मूल्य एवं भावनाओं से पूरी तरह से मुँह फेरता नज़र आता है। शिक्षा की दुनिया में भी अंधकार रूपी बादल छाता दिखाई दे रहा है, जिसके कारण बालक का भविष्य कहाँ जाकर ठहरेगा, कहना संभव नहीं हो पाता है। बालक कहीं अभिभावक के प्यार के अभाव से झुलसा दिखाई देता है तो कहीं पारिवारिक कलह उनके मन को दुख पहुँचाता है ।

उपरोक्त स्थितियों में कोमल बालक ही बेचारा अथवा निरीह दिखाई देता है। क्योंकि, परिवार में उसके माता-पिता अपनी खुशी एवं स्वाभिमान के लिए बालक की भावनाओं को अनदेखा करने से नहीं चूकते। अभिभावक अगर कद्र भी करते हैं तो सिर्फ अपने विचारों में अथवा किसी मज़बूरी वश।

बीज शब्दः बदलते मूल्य, आर्थिक समस्या, मानसिक दबाव हिन्दी कहानियों में बदलते मूल्यों पर अनेकों कहानियाँ मिलती हैं जिनमें बालक अपने बचपन को सिर्फ सपनों में जीता है। आज के समय में अभिभावक आपस में ही बिखरे-बिखरे नज़र आते हैं, जिसका प्रभाव कहीं न कहीं बालक के अंतर्मन पर पड़ता है। मानव की तरह बालक की मानसिकता का भी दबाव से मुक्ति होनी चाहिए। लेकिन, अभिभावक के कठोर शासन की प्रवृत्ति ने बालक के मन को बाँध दिया है। इसी दबाव में बालक का बचपन तहस-नहस हो जाता है क्योंकि, बालक का मन जब खाने के लिए सोचता है तो उसी समय उसे पढ़ने के लिए बैठा दिया जाता है, जब खेलने की इच्छा होती है तो उसे डाँटकर सुला दिया जाता है। ऐसी स्थिति में बालक का मन अंदर ही अंदर कुढ़ता रहता है । अभिभावक के ऐसे व्यवहार से वह स्वयं को उपेक्षित पाता है । अभिभावक की सोच भले ही उसे उपेक्षित करने की नहीं होती है, लेकिन स्थितियाँ बालक के मन में उपेक्षा का भाव भर देती हैं । बालक अभिभावक की हर बात को ध्यान से सुनता है और मन ही मन अपनी प्रतिक्रिया भी ज़ाहिर करता है । उर्मिला शिरीष की कहानी 'पत्थर की लकीर' की बाल पात्र शैला बड़ी हो जाने के बाद भी अपनी माँ द्वारा बुआ के ऊपर की जानेवाली प्रताड़ना को नहीं भुला पाती और माँ से कभी संवेदनात्मक तरीके से नहीं जुड़ पाती।-

"मम्मी, मेरे साथ भी तुम और बंटी वही करोगे, जो बुआ के साथ किया ।..... मैं इस घर की बेटी हूँ, वे दादाजी की बेटी हैं। जब पहले एक बेटी को नहीं समझा गया तो दूसरी को क्या...."[1]

ऐसी स्थितियाँ बच्चों में विकार उत्पन्न करके उनके मनोभावों को दिग्भ्रमित करती हैं। क्योंकि, बालक जो कुछ परिवार या समाज में होते हुए देखते हैं, वैसा ही वह स्वयं के ऊपर आरोपित कर लेता है। इसी को मनोविज्ञान की भाषा में तादात्म्यीकरण कहते हैं । शैला बचपन से ही माँ द्वारा बुआ को परेशान किया जाना

देखती आ रही है। वह इससे प्रभावित होती है और माँ से तर्कवितर्क भी करती है । क्योंकि, सच्चाई शैला को अच्छे से पता है कि बुआ कुछ नहीं करती बल्कि माँ ही उन्हें परेशान करती हैं ।

अब्दुल विस्मिल्लाह की कहानी 'जन्मदिन' में बालक ही नहीं बल्कि माता-पिता भी विवश दिखाई पड़ते हैं । रोती हुई सुनीता को देखकर वह राजू पर उबल पड़ी। "लड़का क्या है, पूरा दुश्मन है, घर भर का ! कभी भी किसी को चैन नहीं लेने देता दुष्ट । लड़की पर क्यों हाथ उठाया रे ? बोल।"

....."देखो मम्मी, चिल्लाओ नहीं, इससे पूछो, मेरी किताबें कैसे फटीं? कल रंग भारती पढ़ रही थी, आज मैंने देखा, उसमें से एक पन्ना गायब है।"[2]

यह सब घर की आर्थिक स्थिति के खराब होने के कारण हैं। बालक पढ़ना चाहता है, लेकिन उसे भी पिता द्वारा उपेक्षित किया जाता है। नवीं क्लास में आते ही पिता घुड़का था-"पढ़-लिखकर कोई जज-कलक्टर बनोगे? चलो, किसी टेलर मास्टर के यहाँ बैठा देता हूँ, काजबटन करना सीखो।"[3]

राजू को बार-बार अभिभावक द्वारा उपेक्षित किया जाना उसके स्वभाव एवं अन्तर्मन को चोट पहुँचाता है। इतना ही नहीं उसमें इनफिरयोरिटी कॉम्प्लेक्स की ग्रंथि पड़ जाती है। ऐसी ग्रंथि बालक के व्यक्तित्व के विकास में बाधक के रूप में कार्य करती है। अभिभावक आर्थिक समस्या की वजह से परेशान एवं चिढ़चिढ़े हो जाते हैं और उनकी झल्लाहट बालक के मानसिक विकास को आघात पहुँचाती है।

आलमशाह खान की कहानी 'पराई प्यास का सफर' का बालक सिर्फ बारह साल का है, जिसके खाने और पढ़ने के दिन हैं। लेकिन वह घर की आर्थिक स्थिति के चलते नौकरी करता और अपने परिवार का पेट पालता है।-

".....वो मेरा नवा बाप ज़ुलम भरा है। माँ के घर में डालने से पेले तो हाँ बोल दिया, अब मुकर गया। बोलता है, तेरे पेले यार का मूत मैं नहीं पालने का।

.....नवे बाप ने मुझे यहाँ नौकरी में डाल दिया है। होटल में ही रहतासहता हूँ। पगार नवा बाप ले जाता है....हर महीने ।"[4]

ऐसे उपेक्षित होने से उसका मन माँ-बहन से भी टूट जाता है। बार-बार मिलनेवाली उपेक्षा उसके मन को संवेदनाशून्य बना देती है ।

पृथ्वीराज की कहानी 'एहासास दर अहसास' की छः वर्षीय बालिका बहुत मासूम है अथवा उसका चित्रण अत्यधिक मासूमियत से भरा हुआ है। उसके अभिभावक बार-बार उसे 'बड़ी कहकर' उससे उसका मासूम बचपन छीनना चाहते हैं। जो उसके अन्तर्मन में गहरा जख्म करता है। उसे पिता के द्वारा बार-बार बड़े होने का एहसास दिलाया जाना उसे अंदर ही अंदर हीन भावना से ग्रसित कर देता है।

' 'निधि! ये क्या कर रही है? तुझे बुखार है, पता है ना ।

.....मैं कोई बच्ची हूँ? स्कूल नहीं जाना अबी? बुखार तो ठीक बी हो गया...।"[5]

बालक का मन अति संवेदनशील होता है । यदि उसकी उपेक्षा की जाए तो उसके मन में अंतद्वद चलता रहता है । यही अंतर्द्वन्द्व अंत में खुद या किसी दूसरे को दंड़ित करता है । यहाँ पर उत्पन्न स्थिति स्वयं को दंड़ित करने की है । लेकिन, "मैं कोई बच्ची हूँ? स्कूल नहीं जाना अबी?" में पिता के प्रति एक दबा हुआ आक्रोश साफ दिखाई देता है ।

माता-पिता द्वारा बच्चों के प्रति उपेक्षाभाव का जो दृष्टिकोण होता है, वह बच्चों के प्राकृतिक विकास में बाधा पहुँचाकर उनके मन में विरोध की भावना को जन्म देती है । ऐसी स्थिति में बालक दयनीय दिखाई देता है ।

इतना ही नहीं, आधुनिक समय में बालक को उचित देखभाल भी नहीं मिल पा रही है । समाज में कुछ पढ़े-लिखे लोगों को छोड़ दिया जाए तो अधिकतर लोग बालकों की उपेक्षा करते आए हैं। अभिभावक की

(शेष पृ.सं. 50)

मूल्य शिक्षा एक विवेचनात्मक अध्ययन

♦ बीना नेगी चौधरी

सारांश - मनुष्य को जीने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता होती है, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसीलिए उसे समाज में समायोजन करने और समाज के व्यक्तियों के साथ मिल जुलकर रहने के लिए सामाजिक नियमों, आदर्शों, परंपराओं और मूल्यों का पालन करना होता है। ऐसे आदर्श, नैतिक नियम एवं परम्पराएँ जो कर्मों की दशा और दिशा तय करती हैं, मूल्य कहलाते हैं। प्रस्तुत आलेख में मूल्य क्या हैं? मूल्य शिक्षा की जीवन में क्या आवश्यकता/ महत्त्व है? मूल्य ह्रास के क्या कारण हैं? मूल्य शिक्षा के साधन कौन- कौन से हैं? इन्हीं बिंदुओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

बीज शब्द - मूल्य शिक्षा की आवश्यकता / महत्व, मूल शिक्षा के साधन, मूल्य ह्रास

मूल्यों का सामान्य परिचयः- प्रत्येक समाज में व्यवहार करने के अपने कुछ आदर्श, सिद्धान्त और नैतिक नियम होते हैं; जिन्हें व्यक्ति अपनी पसंद एवं आवश्यकतानुसार उपयोग करते हैं। ये आदर्श, सिद्धान्त और नैतिक नियम स्वयं में मूल्य नहीं होते, ये तभी मूल्य बनते हैं जब समाज के व्यक्तियों द्वारा इनको महत्त्व दिया जाता है और इन्हीं आदर्शों और नियमों द्वारा उनका व्यवहार निर्देशित और नियंत्रित होने लगता है। फ़्लिक के अनुसार मूल्य मानक रूपी मानदंड हैं जिनके आधार पर मनुष्य अपने सामने उपस्थित क्रिया-विकल्पों में से चयन करने के लिए प्रेरित होते हैं। मूल्य मनुष्य के दीर्घकालीन अनुभवों का परिणाम हैं और इन अनुभवों में परिवर्तन के साथ मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहता है। अतः हम कह सकते हैं कि मूल्यों का संबंध अनुभव से है और मूल्य परिवर्तनशील होते हैं। प्रारम्भ में मानव धर्म, दर्शन, प्रचलित परम्पराओं, मान्यताओं एवं सामजिक आदर्शों के अनुरूप आचरण करते थे। प्रत्येक धर्म के कुछ नैतिक मूल्य होते हैं। भारतीय दर्शन में मोक्ष और भोग दो अलग अलग मूल्य हैं। मोक्ष में विश्वास रखनेवाले ईश्वर-प्राप्ति के लिए कठिन तपस्या एवं त्याग पर विश्वास रखते हैं और भोग में विश्वास रखनेवाले येन केन प्रकारेण अपना स्वार्थ ही सिद्ध करते हैं।

भारतीय संविधान में 6 राष्ट्रीय मूल्य बताये गये हैं, जैसे-स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता। मूल्यों का संबंध कर्तव्यनिष्ठा, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, करुणा और प्रेम आदि अनेक क्रियाओं से संबंधित होता है और ये क्रियाएँ ही मिलकर आदर्श नैतिक नियमों का निर्माण करती हैं जिससे व्यक्तियों का व्यवहार नियंत्रित होता है। परन्तु मनुष्य को अपने विवेक के अनुसार मूल्यों को चुनने की स्वतंत्रता होती है। यह मनुष्य के ऊपर निर्भर करता है कि कौन-सा मूल्य उसके जीवन के लिए अधिक महत्वपूर्ण है? वह किस मूल्य को अधिक पसंद करता है? जैसे महात्मा गांधी ने अपने जीवन में सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह जैसे मूल्यों को प्रमुखता दी। ये मूल्य उनके जीवन की पहचान बन गये। उन्हें सत्य, अहिंसा का पुजारी कहा जाता है। प्रारंभ में प्रेम, सहयोग, परम्पराएं, भाईचारा, सामाजिक नियम, आदर्श, सिद्धांत, व्यवहार मानदंड और धार्मिक नियमों को मूल्यों की संज्ञा दी जाती थी। लेकिन जैसे-जैसे आधुनिकीकरण हो रहा है वैसे ही समाज में सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, नैतिक मूल्य, राजनीतिक व आर्थिक मूल्यों की बात होने लगी है।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकताः- बदलते सामाजिक परिवेश ने सामाजिक आदर्शों, परम्पराओं और मूल्यों को पीछे छोड़ दिया है और मनुष्य अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए

अनैतिकता को भी मूल्य समझने लगा है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, हत्या, बलात्कार आदि समाप्त हुए आदर्शों एवं मूल्यों के उदाहरण हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म, अपनी जाति, अपना व्यवसाय, अपनी संस्कृति और अपनी परम्पराओं को सर्वश्रेष्ठ समझने लगा है। दूसरे से प्रेम करना, दूसरे का सम्मान करना आदि भूल गया है। मूल्यों में देश, काल, परिस्थिति, समाज, संस्कृति, धर्म आदि के आधार पर भिन्नता पाई जाती है और सभी समाज अपने-अपने समाज की आवश्यकता के अनुसार मूल्य शिक्षा देने की बात करते हैं।

आज हमें मूल्यों का ज्ञान तो है, लेकिन हम उन मूल्यों को जीवन में नहीं उतारते हैं, उनका प्रयोग नहीं करते हैं। आज प्रेम, दया, दान, सहयोग, सेवा, करुणा, परोपकार, भाईचारा आदि सारे मूल्य अर्थहीन होने लगे हैं। लोगों का व्यवहार अनिश्चित हो गया है। लोगों का एक दूसरों से विश्वास उठ गया है। सब एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देख रहे हैं, समाज में अराजकता फैली हुई है, परिवार बिखर रहे हैं, संयुक्त से एकल होते चले जा रहे हैं, बच्चे अपने बुजुर्ग माता-पिताओं को अपने घर में रखने के बजाय उनको वृद्धावस्था में वृद्ध आश्रम में छोड़ रहे हैं। राजनीतिक अस्थिरता है, राजनीति का स्तर गिरता चला जा रहा है, लोग अपने स्वार्थ के लिए गलत कार्यों का सहारा ले रहे हैं। समाज में जातिवाद, असहिष्णुता, क्षेत्रवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता की भावना ने उग्र रूप ले लिया है, जिसने हमारी राष्ट्रीय एकता को भी नुकसान पहुंचाना शुरू किया है। इन सभी परिस्थितियों का कारण मूल्यों में ह्रास होना है। यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि 'मूल्य' व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और सम्पूर्ण विश्व के मानव-कल्याण के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

मूल्य ह्रास के कारण :-

धार्मिक उन्माद :- धार्मिक उन्माद आपस में दूरियाँ बढ़ाता है, सांप्रदायिकता को जन्म देता है। इतिहास गवाह है कि धार्मिक कट्टरता के कारण संसार में धर्म के नाम पर कई बार लड़ाई झगड़े होते रहे हैं जिसके कारण बहुत बड़े-बड़े धार्मिक दंगे जन्म लेते हैं और व्यक्तियों में आपस में प्रेम, विश्वास और सहानुभूति की भावना में कमी हो जाती है। भय का माहौल पैदा होता है। अफगानिस्तान में लोकतान्त्रिक सरकार को गिराकर तालिबानियों का सरकार बनाना, आईसिस का धर्म के नाम पर मासूम लोगों का कत्ल् करना ये सब धर्मिक उन्माद के उदाहरण हैं।

अहं की भावना :- अहं की भावना स्वयं को सर्वश्रेष्ठ बनाने पर बल देती है, तब व्यक्ति दूसरों के अधिकारों को महत्व नहीं देता है जिससे लोगों में आपस में दूरियाँ बढ़ती हैं और आपसी वैमनस्य-भावना का विकास होता है।

शक्ति और संपन्नता की चाह :- शक्ति और धन संपदा से संपन्न होने के लिए व्यक्ति बहुत बार मूल्यों जैसे ईमानदारी, दया और करुणा जैसे मूल्यों को ताक पर रखकर भ्रष्टाचार, लूट खसोट और हत्या जैसे अनैतिक कार्यों को करता है। समाज में ऐसे कई व्यक्तियों के उदाहरण भरे पड़े हैं जिनमें बड़े-बड़े उद्योगपति राजनेता शामिल हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े घोटाले करके शक्ति और सम्पन्नता हासिल की है।

इंटरनेट :- वर्तमान परिस्थितियों में इंटरनेट मुख्य आवश्यकताओं में से एक है। इंटरनेट ने हमारे जीवन को आसान और अधिक सुविधाजनक बना दिया है। लेकिन इसके साथ ही इंटरनेट के माध्यम से व्यक्तियों में बहुत सारे गलत प्रभाव भी देखने को मिले हैं। कई बार इंटरनेट में ऐसी सामग्रियाँ दिखाई जाती हैं जो मूल्य-ह्रास का कारण बनती है। हैकिंग, शिपिंग, फिशिंग, साइबर क्राइम आदि सिर्फ इंटरनेट के नुकसान के कारण हो रहे हैं। व्यक्ति इंटरनेट के माध्यम से बाहरी दुनिया से जुड़ रहा है। लेकिन अपनों से दूरी बढ़ रही है, परिवार टूट रहे हैं। अश्लीलता बढ़ रही है, बातों को गलत तरीके से पेश करना, व्यक्तिगत वीडिओ बनाकर लोगों को बलैकमेल करना, ये सभी अनुचित कार्य मूल्य ह्रास के कारण हैं।

फिल्म:- कहा जाता है कि फिल्में समाज का आईना होती हैं। फिल्मों से व्यक्ति के मन में सकारात्मक मूल्यों

का भी विकास होता है। लेकिन बहुत बार ये व्यक्तियों में मूल्य ह्रास का कारण बनती हैं। फिल्मों में फैशन, स्टाइल, नशीले पदार्थों का सेवन, मारकाट, क्राइम आदि को इस तरीके से दिखाया जाता है कि बच्चे इन्हें अपनाकर मॉडर्न दिखने की कोशिश करते हैं और उन्हें पता ही नहीं चलता कि वे कब गलत रास्ते पर चले गए हैं। अहिंसा की जगह हिंसा का पाठ पढ़ रहे हैं। अपराध की प्रवृत्ति बढ़ रही है। जैसे अमेरिका में बहुत बार नाबालिगों ने सार्वजनिक स्थानों पर गोलीबारी करके लोगों की हत्या की है। जब उनसे पूछा गया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया तो वे उत्तर देते हैं कि वे फिल्म देखकर प्रभावित हुए हैं। इस प्रकार की नकारात्मकता, दूसरों के जीवन की परवाह न करना, दया और करुणा की भावना का अभाव आदि समाज सम्मत मूल्य नहीं कहे जा सकते।

सोशल मीडिया:- आजकल एक नया प्लेटफॉर्म है जिसके माध्यम से हर व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त कर पूरे विश्व में फैला सकता है। व्यक्ति इस प्लेटफार्म का प्रयोग धार्मिक उन्माद, असहिष्णुता, नफ़रत आदि पैदा करने के लिए कर रहे हैं। सी ए ए के खिलाफ शाहीन बाग का प्रदर्शन इसका उदाहरण है, जिसके माध्यम से दो समुदायों के बीच दूरियाँ पैदा करने और आपसी सौहार्द को खत्म करने की कोशिश की गई।

शिक्षकों का नकारात्मक रवैया:- शिक्षक समाज की दिशा को तय करने का कार्य करते हैं। वे भविष्य के नागरिकों का निर्माण करते हैं। कुछ शिक्षक बच्चों में सामाजिक मूल्यों का विकास करने के बजाय स्वयं भी उंच नीच, जात-पाँत, छोटा-बड़ा जैसी भावनाओं से ऊपर नहीं उठ पाते और उनकी ये भावनाएँ किसी न किसी रूप में प्रकट होती रहती हैं, जो बहुत बार विवाद का कारण बनती हैं। जैसे अक्सर हम कई बार सुनते हैं कि शिक्षक मध्याह्न भोजन के समय बच्चों के बैठने की व्यवस्था जाति के आधार पर करते हैं। उनका मूल्यांकन भी पक्षपातपूर्ण करते हैं, जिससे बच्चों के कोमल मन में एक दूसरे के लिए प्रेम की भावना का विकास नहीं हो पाता है, उनके मन में एक दूसरे के लिए दूरियाँ और नफरत रहती हैं। शिक्षक में ही अगर समाज सम्मत मूल्य नहीं है तो ऐसा शिक्षक समाज में भेदभाव और वैमनस्यता फैलाने का कार्य करते हैं।

राजननीति का गिरता स्तर :- राजनेता जो संसद में आम आदमी का प्रतिनिधत्व करते हैं उनकी कथनी और करनी में बहुत अंतर होता है। ये राजनेता अपने फायदे के अनुसार अपने आदर्श और पार्टियाँ बदलते रहते हैं। समाज में एक कहावत है कि अगर आपको नेता बनना है तो अनुचित करनी ही आपकी योग्यता है।

पश्चिमीकरण का अनुकरण:- वर्तमान में युवा स्वयं को मॉडर्न दिखने के लिए अपनी संस्कृति को छोड़कर पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण कर रहे हैं। बड़ों का आदर-सम्मान करने में शर्म महसूस करते हैं। अश्लीलता को जीवन में शामिल कर रहे हैं। अपनी संस्कृति के आदर्शों को भूलकर चकाचौंध से प्रभवित हो रहे हैं। 'सादा जीवन उच्च विचार' उक्ति अब केवल उक्ति ही प्रतीत हो रही है।

मूल्य-शिक्षा प्रदान करने के विभिन्न साधन:-

परिवार :- प्रारंभ में बच्चा अपने माता-पिता, भाई-बहन एवं घर के बुजुर्गों का अनुसरण करके सीखता है और यहीं से उसके मूल्य निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। परिवार के सदस्यों का यह कर्तव्य है कि वे बच्चों को सत्य असत्य, अच्छे और बुरे का विश्लेषण करना सिखायें, ऐसी कहानियाँ सुनायें जो छोटी और सरल हैं, जिनका बच्चे के आचरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़े और उन कहानियों के माध्यम से बच्चों में आदर्शों का विकास किया जा सके।

टी वी और प्रिंट मीडिया:- टीवी और प्रिंट मीडिया में इस प्रकार के कहानी, नाटक, धारावाहिक दिखाई जानी चाहिए जिनसे बच्चों में नैतिक मूल्यों का विकास हो सके।

विद्यालय:- विद्यालय ऐसा स्थान है जहाँ पर सभी धर्म, जाति और वर्ग के बच्चे एक साथ अध्ययन करते

हैं। विद्यालय में इस तरीके के पाठ्य सामग्रियों का आयोजन किया जाना चाहिए जो बच्चे में प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, समानता, भाईचारे की भावना का विकास कर सकें।

पाठ्यक्रम:- पाठ्यक्रम के अभाव में विद्यालय की कल्पना नहीं कर सकते। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे बच्चे के नैतिक चरित्र का विकास किया जा सके। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने भी नैतिक शिक्षा और मूल्य शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या को दो भागों में बाँटा था। उन्होंने कहा कि विद्यालय स्तर पर नैतिक और धार्मिक सिद्धांतों को बतानेवाली कहानियां, महान व्यक्तियों की जीवनी और उनके विचारों को पढ़ाना चाहिए और विश्वविद्यालय स्तर पर बड़े-बड़े दार्शनिकों, महान व्यक्तियों की जीवन गाथा और विभिन्न धार्मिक ग्रंथों के महत्वपूर्ण भागों को पढ़ाया जाना चाहिए जिससे व्यक्ति में मूल्यों का विकास किया जा सके। हमारे इतिहास में कई ऐसे पात्र हैं जिन्होंने मूल्यों की रक्षा के लिए अपने जीवन को मुश्किल में डाल दिया। राम ने पिता के वचन की रक्षा के लिए 14 वर्ष वनवास में बिताया और सभी सुख और सुविधाओं को त्याग दिया। 'गीता' श्रीकृष्ण द्वारा कर्मक्षेत्र में अर्जुन को दिए गए आचारों की संहिता है।

समुदाय के व्यक्तियों का मूल्य आधारित आचरण:- सामाजिक मूल्य और सामाजिक आचरण दोनों में विभेद नहीं होना चाहिए। जैसे संविधान में समानता की बात की गई है लेकिन हमारे देश में कुछ विशेष वर्ग को अल्पसंख्यक, कुछ विशेष जाति को निचली पिछड़ी जाति का कहकर, उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं। विभिन्न व्यक्ति सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि के रास्ते पर चलने की बात करते हैं। लेकिन स्वयं काम, क्रोध, लोभ, मोह और सत्ता के मद में चूर रहते हैं।

योग :- पतंजलि के अनुसार योग का अर्थ है चित्तवृतियों का निरोध। इसके लिए उन्होंने अष्टांग योग मार्ग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि बताया। ये सभी हमें मन, वचन, कर्म, सत्य, अहिंसा, अस्तेय,अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य के मार्ग पर ले जाते हैं जिससे मनुष्य के नैतिक और चारित्रिक विकास के साथ मानसिक, शारीरिक,सामाजिक और सांस्कृतिक विकास भी होता है।

उपसंहार :- मूल्य वे हैं जो हमें कर्तव्यबोध करते हैं, समाज सेवा के लिए प्रेरित करते हैं, सभी प्राणियों और राष्ट्र हित के लिए अपने निहित हितों का त्याग करना सिखाते हैं। इसीलिए हर युग में, विभिन्न धर्मों और जातियों में मूल्यों पर ज़ोर दिया जाता है। बढ़ती अनैतिकता और अराजकता को समाप्त करने हेतु मूल्य शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। भारत में विभिन्न शिक्षा आयोगों ने समय-समय पर स्कूलों में पाठ्यक्रम के माध्यम से मूल्य शिक्षा देने की बात की है। नई शिक्षा नीति एन ई पी 2020 में भी विद्यार्थियों में बचपन से ही नैतिक, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों जैसे- सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान, वैज्ञानिक स्वभाव, ज़िम्मेदारी, समानता, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, सहानुभूति, करुणा, अहिंसा ,भाईचारा, प्रेम, सहयोग और टीम वर्क, राष्ट्र प्रेम, पर्यावरण के प्रति प्रेम आदि सिखाने की बात की है। आज प्रत्येक व्यक्ति की यह ज़िम्मेदारी है कि वह ऐसे आदर्श, सिद्धांत, नैतिक नियम और व्यवहार मानदंड अपनाये, प्राणिमात्र का कल्याण करे।

सन्दर्भ

1. लाल आर. बी. (2004). शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजशाहत्रीय सिद्धांत (पन्द्रहवां संस्करण). रस्तोगी पुब्लिकेशन्स, पृष्ठ 524, 533 534.
2. लाल और तोमर(2010). शिक्षा के दार्शनिक आधार, आर लाल प्रुक डिपो, पृष्ठ 114.
3.www.supportmeindia.com
4. www.education.gov.in› sites›mhrd›

♦ शोधछात्रा, शिक्षा संकाय,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल (उत्तराखंड)।

शिक्षा और समाज व्यवस्था के विविध दृष्टिकोण

♦ सिराजुल हक

सारांश - हिंदी साहित्य के अन्य महान हस्तियों की तरह नासिरा शर्मा का योगदान अपरिसीम है। उन्होंने साहित्य के विविध विधाओं पर कार्य किया है, उसमें उपन्यास विधा अधिक चर्चित है। अनेकानेक बिंदुओं को उपन्यास का विषय चुना है। उन बिंदुओं में से शिक्षा और समाज व्यवस्था उल्लेखनीय है। शिक्षा से संबंधित विविध बिंदुओं को परखने के लिए उनके कुछ उपन्यासों का जिक्र करना आवश्यक है, उसमें शाल्मली, ठीकरे की मंगनी, ज़ीरो रोड, कुइयांजान, शब्द पखेरू और अक्षयवट है। नासिरा शर्मा का मानना है कि शिक्षा का अर्थ व्यवहार में व्यापकता और सोच की जटिलता को तोड़कर उसमें विस्तार लाना है। इसमें शिक्षा की व्यापकता और विस्तार की वकालत की है। उन्होंने अपने उपन्यास में स्त्रियों को सामाजिक बंधन तथा मजहबी ताल्लुकात से बाहर करते हुए आधुनिक शिक्षा से रूबरू कराया है। इसके साथ गरीबी, आर्थिकता की वज़ह से दलित, अल्पसंख्यक, निम्न वर्ग, मध्य वर्ग आदि विविध वर्ग के लोग काफी समस्याएँ झेल रहे हैं। इसका जिक्र उनके उपन्यास में परिलक्षित होता है।यदि हम इसकी जड़ को देखें तो समाज व्यवस्था ख़री उतरती है, जिसके कारण लोगों को शिक्षा से वंचित होना पड़ा और आज भी कुछ लोग इसके शिकार हैं, जो नासिरा शर्मा के उपन्यासों में देखने को मिलता है।

बीज शब्द : शिक्षा, मिश्रित संस्कृति, समाज व्यवस्था

शिक्षा दुनिया की उच्च कोटि की सीढ़ी है और अंधकार की रोशनी है, जो इंसान को गंवार, अनपढ़ और बुद्धिहीनता से एक सही रास्ते की ओर ले जाती है और अंधता एवं रूढ़िग्रस्तता से बचाने का काम करती है। इसकी वज़ह से आज हम कोने-कोने तक झाँक सकते हैं। इसलिए शिक्षा को आदमी का तीसरा नेत्र कहा जाता है। हाँ, इसे हासिल करने के लिए एक लंबा सफर तय करते हुए विविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। फिर भी लोग सीमित नहीं रहते हैं, वे शिक्षा के लिए जद्दोजहद, संघर्ष करते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए शिक्षा और समाज व्यवस्था के विविध दृष्टिकोणों को नासिरा शर्मा के उपन्यास के माध्यम से विचार-विश्लेषण किया जा सकता है।

हिंदी साहित्य में नासिरा शर्मा का नाम वहुचर्चित है। वे एक मिश्रित समाज व्यवस्था से ताल्लुक रखती हैं जहाँ हिंदू-मुस्लिम दोनों संस्कृतियाँ विराजमान हैं। उन्होंने उपन्यासों में शिक्षा के संदर्भ में विविध दृष्टिकोणों का जिक्र किया है। नासिरा शर्मा 'शाल्मली' उपन्यास में लिखती हैं कि "शिक्षा का अर्थ व्यवहार में व्यापकता और सोच की जटिलता को तोड़कर उसमें विस्तार लाना।"[1] उन्होंने शिक्षा की व्याकपता और विस्तार की बात की है। सवाल होता है कि यह किस प्रकार संभव है? बाधाएँ अनेक हैं। फिर सारी बाधाओं को चकनाचूर करते हुए आगे बढ़ना है। लेकिन कभी-कभी इसके सामने कट्टरवादी समाज एक बड़ी दीवार की तरह खड़ा होता है, जिसे लांघना नामुनासिब हो जाता है। लेकिन हार स्वीकार करना गलत बात है और हालात भी इज़ाज़त नहीं देती है। परंतु मजबूरी है, क्योंकि आधुनिक दौर में बाल-बच्चे बहुत आगे निकल चुके हैं। किंतु जब कोई पहली बार चहारदीवारी से निकलकर बाहरी दुनिया में कदम रखता है, उसे बिजली की चमक की तरह शक होने लगता है। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' में महरूख कहती है दिल्ली जाना है! मैं तो कभी लखनऊ तक नहीं गई। अम्मू मियां बुला-बुलाकर थक

गए। कैसी होगी दिल्ली! दिल्ली से वह एम.ए. करेगी। कितनी बड़ी डिग्री मानी जाएगी एम.ए. की, वह दिल्ली से....!"[2] यह एक मुस्लिम समाज की एक लड़की का असली कारनामा था। लेकिन आज काफी बादल चुका है। फिर भी कहीं-कहीं पर आज भी मुस्लिम समाज में यह समस्या देखने को मिलती है और लड़की को बगैर शादी के बाहर पढ़ने के लिए इज़ाज़त नहीं देती है। नासिरा शर्मा ने इस स्थिति को 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में जिक्र किया है। जो इस प्रकार है-"सर का बोझ हलका करना है, तो कायदे से करो, लड़की को कुएं में तो मत ढकेलो। सुनो अमजद, अव्वल तो महरूख हम पर बोझ नहीं है मगर दुल्हन से कहो कि लड़की शादी के बाद ही आगे पढ़ने बाहर जाएगी, वरना बहुतेरे लड़के हैं। हाथ पीले ही करने हैं, तो हो जाएंगे। लड़कों का अकाल नहीं पड़ा है इस खानदान में।"[3] इस प्रकार अब आप सोच सकते हैं कि उस वक्त लड़की को तालीम हासिल करना कितनी बड़ी बात थी। लेकिन परिवार के सब कट्टर नहीं थे। उस लड़की के माँ-बाप दोनों बेटी की उच्च शिक्षा के लिए समर्थन देते हुए हौसला अफजाई की कि महरूख, तुमसे हमारी बहुत उम्मीदें लगी हैं, बेटी, खब दिल लगाकर पढ़ना। अपने अब्बू का सर नीचे न होने देना। देख रही हो, किसी को तुम्हारा जाना भाया नहीं है। मेरी लाज रखना, बेटी।"[4] इसमें एक माँ ने बेटी को शिक्षा के प्रति उत्साहित किया है और बाप का नाम रोशन करने की बात कही है। उसकी माँ ने बेटी की शिक्षा के लिए समाज व्यवस्था के साथ कभी हार नहीं मानी। क्योंकि वह जानती थी कि शिक्षा का महत्व किस प्रकार है। इसलिए समाज की पुश्तैनी बाधाओं को तोड़कर एक नया समाज गढ़ने का संकल्प लिया। नासिरा शर्मा उपन्यास में लिखती हैं..."मैं औरत हूँ, खूब अच्छी तरह से जानती हूँ कि इस नए दौर में औरत के लिए मज़बूती क्या होनी चाहिए। जमाने के कहने से क्या हमने लड़कियाँ स्कूल से निकलवा ली थी?...मगर लड़की अपना अच्छा बुरा समझे यह अक्ल तो तालीम ही दे सकती है।"[5] इसमें एक माँ ने बेटी की पढ़ाई के लिए व्यवस्था के साथ संघर्ष और त्याग दोनों एक साथ किये हैं। इसके पीछे यह कारण था कि बेटी को सही गलत समझ में आ जाएँ।

नासिरा शर्मा अन्य एक उपन्यास में पिता का रोल अदा करवाती हैं, जिसमें लिखती हैं -"दिल लगाकर पढ़। रसोई के काम में समय न खराब कर, तेरी माँ है न इन कामों के लिए। आखिर सारे दिन घर में बेकार रहती है, आगे-पीछे करके वह सारे काम निपटा लेती है।"[6] इसमें पिता ने बेटी को दूसरे काम को छोड़ केवल पढ़ाई में मनोयोग लगाने की बात स्पष्ट की है। यह हर फैमिली के बुजुर्गों का फ़र्ज़ बनता है। मगर घर की समस्या देखते हुए किसी का मन कैसे पढ़ाई में लग सकता है। लेकिन शिक्षा हर इंसान की स्थायी संपत्ति है। भले ही इंसान के पास कुछ रहें या न रहें, मगर शिक्षा कभी खत्म होनेवाली नहीं है। यह इंसान की अंतिम सांस से लेकर कयामत तक जीवित रहेगी। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'ज़ीरो रोड' में विवेक ने अपनी बहन पूनम को समझाते हुए कहा-"मेरी मानो तो सब कुछ भूलकर पढ़ाई में लग जाओ। वही हमारा है। मकान, दुकान, शादी विवाह में हमारी मुक्ति नहीं है।"[7] इतना कहकर विवेक पढ़ने लगा, मगर पूनम के अंदर एक दुनिया की घंटी बजती रही। पूनम कहने लगी कि "मेरी मुक्ति तो बाबूजी अम्मा मेरी विदाई में देखते हैं। अगर कक्षा में टॉप भी कर लूँ तो मेरा भविष्य तो बदलेगा नहीं?"[8] इसमें कई तरह के सवाल होते हैं, क्या वह सचमुच परिवार का बोझ है? क्या उसे लड़कों की तरह नौकरी करने का मन नहीं है? केवल शादी-ब्याह के लिए पढ़ाई की जाती है? यदि यह परिवार का उद्देश्य नहीं है तो उन्हें विदा करने में इतनी जल्दबाजी क्यों? नासिरा शर्मा का 'शाल्मली' उपन्यास में शाल्मली की शादी को लेकर उसकी माँ हमेशा चिंतित थीं, किंतु उसके पिता ने कहा-"मुझे भी चिंता है। दो वर्ष बाद...अभी उसे कम्पिटीशन में बैठने दो। ब्याह दिया तो चूल्हे-चक्की में पिस जाएगी।"[9] इसमें

बेटी की शादी को लेकर एक माँ की परेशानी और एक पिता ने बेटी के स्वावलंबन की ओर इशारा करते हुए चुल्हे-चक्की की बात कहने न भूले। नासिरा शर्मा के- 'कुइयांजान' उपन्यास के प्रमुख पात्र डॉक्टर कमाल ने बहन सफिया की शादी की चर्चा की। तब सफिया ने इसका विरोध करते हुए कहा- "मुझे अभी शादी नहीं करनी है। मुझे पढ़ना है।"[10] इसमें नारी की आवाज़ बुलंद हुई है। मगर आज की तरह नारी समाज उतना स्वतंत्र नहीं था, जिसकी वज़ह से पुरुष प्रधान समाज के सामने हार कबूल करना एक प्रकार की मजबूरी थी। आज भी नारी समाज के साथ सरासर अन्याय हो रहा है।

जब कोई लड़का पढ़ाई छोड़कर अन्य काम तथा नौकरी करना चाहता है, तब उसे पढ़ने के लिए तरह-तरह का सपना दिखाया जाता है। नासिरा शर्मा का 'ज़ीरो रोड' उपन्यास के प्रमुख पात्र सिद्धार्थ ने अपने छोटे भाई से कहा-"चल पगले! पढ़ाई में मन लगा। दुनिया चमकीली है, मगर वह चमक हमारे लिए है भी और नहीं भी। उसे हम देख सकते हैं मगर उसके मालिक नहीं बन सकते। हाँ, विद्या को तो हम सँजो सकते हैं। उस दौलत के स्वामी तो बन सकते हैं।"[11]इसमें शिक्षा की आवश्यकता का एक निदर्शन उजागर किया गया है।"

शिक्षा प्राप्त करने के लिए रुपये का होना जरूरी है जिसकी खातिर पढ़ाई में रुकावट आती है। गरीब माँ-बाप क्या करेंगे? जिसका झोला खाली है, उसे विद्या से कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसको पैसा चाहिए, ताकि दो वक्त रोटी मिल जाए। इसलिए अपने बच्चों को पढ़ाने के अलावा काम में लगाने की व्यवस्था की खोज करता है। नासिरा शर्मा का 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में करीम के पिता महरूख को कहते हैं-"ओ करमजले करीमवा, अब ई पढ़ै-लिखै को मारौ गोली, ओ मा साला का रखा है, चलो हमरे साथ, हुआं चार पइसा हाथ लगिहें तो कल तोहार काम अइहेंअब हम माईबाप से का कहें बहिन जी, आप ही बताएं?"[12] इसमें मूल रूप में यह कह गया है कि गरीब घराने का बेटा करीम पढ़ाई करना चाहता था, किंतु गरीब होने की वज़ह से उसकी पढ़ाई हो नहीं पायी, उसके पास पर्याप्त पैसा नहीं था, इसलिए पिता ने बेटे को पढ़ाई के अलावा काम में लगाने का फैसला लिया, ताकि कुछ पैसा कमाई हो जाएँ, जिससे वे आराम से गुज़र-बसर कर सकें। मगर समझदार इंसान कभी अपने बच्चों को शिक्षा से वंचित रखना नहीं चाहता है। वे बच्चों को तालीम देना ज़रूरी मानते हैं, मगर उनके सामने पैसा एक बहुत बड़ी दीवार बनता है। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' के झुम्मन नाई कहते हैं "अरे मोर रानी बिटिया! इ मुए पैसे में अब कुछऊ नाहीं रखा है। हम तो चाहित हन कि लड़कवा चार अच्छर पढ़कर कन्सतर (कलक्टर) न बनें तो कम से कम चपरासी, चौकीदार तो लग जाए। सच जानो बिटिया! इस धन्धे में अब धेले की आमदनी नाहीं रह गई है। मियां लोगन अपनी हजामत खुदय झील लेत हैं, औरतो और वे नाखून भी काट लेत हैं।....अब तो हमरी ज़रूरत बस मरेजिये के दिन पड़त हैमरे पर के का बस? पैदा होए पर सरकारी रोक लग गई है, सो हम छट्ठी चाले से भी गए हैं। अब सिर्फ बालकाट के जो दो पइसा हाथ लागत है ओ मा का खायें, का पकाएँ?"[13] इससे यह स्पष्ट होता है कि गरीबी मूल समस्या है, जिसकी वज़ह से सब आशाएं चौपट हो जाती हैं। यह समस्या सबसे ज्यादा निचले तबके की है। एक जमाना था कि दलित लोगों को सवर्ण वर्गों ने दबाव डाल रखा था, ताकि वे ज्यादा पढ़ न पाएँ। इसलिए जल्दी शादी कराने के लिए उतावले हो जाते थे। यह एक प्रकार से सामाजिक डर था और इज़्ज़त का सवाल भी था। नासिरा शर्मा का 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में बिन्दिया ने कहा- "बूढ़ा तोता राम राम नाहीं करत हैं बेटवाऔकी अब ब्याह की उम्र होइ गई है। अभी न हुआ तो समझो, बिरादरी में हमार नाक कट जाई कि हमरे रमेशवा में कोई खराबी है हम का ऐसी पढ़ाई नाहीं चाही कि जो कल हमार

हुक्कापानी बन्द कराइ दे।"[14] ये सब निम्न वर्ग की समस्याएँ हैं। लेकिन मध्य वर्ग भी कहीं न कहीं बच्चों की चाहत को पूरी करने में नाकाम रहते हैं। कोई उच्च शिक्षा की उम्मीद पाल रखी है। इधर घर की हालत भी नाजूक है, फिर भी उम्मीद नहीं छोड़ती। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'शब्द पखेरू' की शैलजा अपने पिता से कहती है -"किपापा क्या तुम मुझे कुछ महीनों विदेश में पढ़ने का बन्दोबस्त कर सकते हो, मेरा मतलब है टिकट और दाखिले की फीस। फिर मैं वहाँ काम करके बाकी खर्च उठा लूँगी।"[15] इसमें शिक्षा के प्रति उत्साह तो दिखाया है, किंतु पैसा का अभाव भी दिखाया है। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'कुइयांजान' में अन्ना बुआ नौकररानी का काम करती थी, उससे जो मज़ूरी मिली, पूरे पैसे अपने बेटे को देते हुए कहा-"बच्चों की पढ़ाई में कमी न करना।"[16] इसमें बुआ ने एक दादी की भूमिका निभायी है। बुआ का पैसा देने से यह स्पष्ट हुआ कि उनके पोता-पोती आगे जाकर पढ़ाई के लिए पैसे की कमी महसूस न करें और सुन्दर ढंग से तालीम ले सकें।

शिक्षा हासिल करना आसान नहीं है, कठिन भी नहीं है। दोनों का मिश्रित रूप शिक्षा में देखने को मिलता है। इसमें घरेलू समस्या के साथ-साथ घर के बाहर की समस्या भी मायने रखता है, जिसकी वजह से किसी का जीवन उज्ज्वल होता है और किसी का जीवन बर्बाद होता है। ऐसी एक घटना के बारे में नासिरा शर्मा के उपन्यास 'अक्षयवट' में जिक्र किया गया है। जहीर उस हादसे का शिकार हुआ। वह परीक्षा लिख रहा था कि फर्जी नकल कॉपी का इल्जाम लगाकर दो साल के लिए बर्खास्त कर दिया गया जिसकी वज़ह से वह मानसिक रूप में दुर्बल हो गया। उसकी दादी उसकी पढ़ाई का काफी ख्याल रखती थी। एक दिन उससे पूछा कि 'पढ़ाई कैसी चल रही है?' 'मुझे आगे नहीं पढ़ना है।'- चिढ़कर जहीर बोला। 'आगे नहीं पढ़ना मतलब?' फिरोजजहाँ के तेवर चढ़ गये।.... "बस दादी! मैने कह दिया मुझे आगे नहीं पढ़ना है, तो नहीं पढ़ना है। मेहरबानी फरमाकर आज के बाद आप मुझसे पढ़ाई की बात हरगिज नहीं करेंगी।"[17] जब जहीर के साथ हुआ हादसा का पूरा मामला परिवारवालों को पता चला, तब उसकी माँ ने जहीर से कहा कि "तुम नाहक परेशान होते हो! तुम प्राइवेट इम्तहान की तैयारी करो। मैं रजाइयों को रात-दिन सिलकर घर को पहले की तरह संभाल लूँगी। फिर दादी फिरोजजहाँ बोली कि...बाद में पछताना न पड़े जहीर। पढ़ाई ज़ारी रखो बेटे!"[18] लेकिन उसने किसी की बात नहीं सुनी, पढ़ाई छोड़ दी और दुकान करना शुरू कर दिया। फिर आगे जाकर पढ़ने का मन बना लिया और कहा..."अभी मुझे अपनी अधूरी पढ़ाई करनी है, फिर कुछ सोचूँगा।19 परीक्षा हॉल में नकल कॉपी पकड़ा जाना, उसे परीक्षा हॉल से बहिष्कार कर देना यह समस्या भी शिक्षा के क्षेत्र में देखी जाती है।

निष्कर्ष-उपरोक्त विचार-विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि शिक्षा एक प्रक्रिया है, जो लोगों को अच्छी ज़िंदगी देती है। समाज व्यवस्था एक माध्यम है, जिससे इंसान को राह मिलती है। गरीबों को शिक्षा हासिल करने में विविध समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आज हमें ऐसे लोगों की शिक्षा के प्रति जागरूक होना है, साथ-साथ समाज व्यवस्था के विविध दृष्टिकोणों और समस्याओं को दूर करते हुए एक परिष्कृत समाज ग़ढना आवश्यक हो गया है, ताकि शिक्षा हासिल करने में कोई समस्या न हों, कोई रोकटोक न हो। शिक्षा समाज व्यवस्था की रीढ़ है, जो एक-दूसरे से प्रभावित हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नासिरा शर्मा- शाल्मली , पृ. 135, किताबघर प्रकाशन, संस्करण -2013
2. नासिरा शर्मा- ठीकरे की मंगनी , पृ. 22, किताबघर प्रकाशन, संस्करण -2014
3. वही, पृ. 24

4. वही, पृ. 40
5. वही, पृ. 22
6. नासिरा शर्मा- जीरो रोड, पृ. 18, भारतीय ज्ञगनपीठ प्रकाशन, तीसरा संस्करण -2012
7. वही, पृ. 152
8. वही, पृ. 152
9. नासिरा शर्मा- शाल्मली , पृ. 20, किताबघर प्रकाशन, संस्करण -2013
10. नासिरा शर्मा- कुइयांजान, पृ. 67, सामयिक प्रकाशन, तीसरा संस्करण -2017
11. नासिरा शर्मा- जीरो रोड, पृ. 195, भारतीय ज्ञगनपीठ, तीसरा संस्करण -2012
12. नासिरा शर्मा- ठीकरे की मंगनी , पृ. 156, किताबघर प्रकाशन, संस्करण -2014
13. वही, पृ. 156
14. वही, पृ. 157
15. नासिरा शर्मा- शब्द पखेरू , पृ. 21, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण -2017
16. नासिरा शर्मा- कुइयांजान, पृ. 70, सामयिक प्रकाशन, तीसरा संस्करण -2017
17. नासिरा शर्मा- अक्षयवट, पृ. 209, भारतीय ज्ञगनपीठ, दूसरा संस्करण -2016
18. वही, पृ. 112
19. वही, पृ. 402

शोधार्थी
हिंदी विभाग, पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय,
आर.वी.नगर, कालापेट,
पुदुच्चेरी 605014,
मो.नं 7598608859
ईमेल-shirazulhoque354@gmail.com

(पृ.सं.41 के आगे)

आर्थिक स्थिति सही न होने, अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण एवं अत्यधिक अपेक्षा रखने से बलक ऐसी स्थितियों का शिकार होता है और बालक अपनी समस्या किसी और से बताने में हिचकिचाहट का अनुभव करता है तथा शोषित होता रहता है। यौन शोषण, बालश्रम, अपेक्षा अथवा उपेक्षा आदि तमाम तरह से बालक का शोषण परिवार में होता है और वे चुपचाप इन घिनौने शोषण से शोषित होते रहते हैं ।

इसप्रकार व्यक्तिगत रूप से शोषित बालक का मन तनाव, मानसिक संघर्ष इत्यादि मनोविकारों से ग्रसित हो जाता है, जिससे बच्चों का व्यवहार असामान्य हो जाता है। मानसिक दबाव का अधिक असर पड़ने पर आज के समय में बालकों में आत्महत्याओं की प्रवृत्तियाँ भी अधिक बढ़ने लगी हैं।

संदर्भ

1 शिरीष, उर्मिला, पत्थर की लकीर, साहित्य अमृत; प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली; 2002; पृ. सं. 10.
2 बिस्मिल्लाह, अब्दुल, जन्मदिन, बचपन की कहानियाँ, गिरिराज शरण अग्रवाल द्वारा संपादित; प्रभात प्रकाशन. नई दिल्ली; 2010, पृ. सं. 16.
3 वही.
4 खान, आलमशाह; पराई प्यास का असर; बचपन की कहानियाँ, गिरिराज शरण अग्रवाल द्वारा संपादित; प्रभात प्रकाशन. नई दिल्ली, 2010, पृ. सं. 27.
5 मोंगा, पृथ्वीराज; एहसास दर एहसास. बचपन की कहानियाँ, गिरिराज शरण अग्रवाल द्वारा संपादित; प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010; पृ. सं.73.

♦ सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश
drvikashsinghh@gmail.com

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha